



1991



GALAXY AGENCIES

SALES PROMOTERS EXPORTERS & GENERAL ORDER SUPPLIERS



Office :

X-2, Green Park, New Delhi-110016

Phone : 66, 29, 93

नाट्यार्चन संगीत-वार्षिकी

सम्पादक :

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

संस्थापक :

श्री दिवाकर पाठक

परामर्श मण्डल :

उस्ताद विस्मिल्लाह खाँ

डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

डॉ० (श्रीमती) एन० राजम्

डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

डॉ० सुभद्रा चौधरी

सह सम्पादक :

श्री प्रमोद कुमार पाठक

संयोजक :

श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह

प्रकाशक :

श्री शिव-काली मन्दिर संगीत समिति

डीरेका, वाराणसी-221004

मुद्रक :

खण्डेलवाल प्रेस ऐण्ड पब्लिकेशन्स, मानमन्दिर,
वाराणसी ।

पद्मपत्रप्रभः षड्ज, ऋषभः शुक्लवर्णकः । कनकाभस्तु गान्धारो, मध्यमः कुन्दसन्निभः ॥

पञ्चमस्तु भवेत् कृष्णः, पीतवर्णस्तु धैवतः । निषादः सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः ॥

—आवरण पृष्ठ पर संगीत के सात स्वर, (बृहद्देशी)

पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ लेखकों के अपने विचार हैं, सम्पादक किसी विवाद के लिए उत्तरदायी नहीं हैं ।
कृपया प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका का कोई भी अंश अन्यत्र प्रकाशित न किया जाय ।

शुभाशंसनम्

पत्रिका आतपत्रा स्यात् मुदिताः सन्तु गायकाः ।

संवादिनो वादकाः स्युः स्वस्था नृत्यन्तु नर्तकाः ॥

—गजानन शास्त्रि मुसलगाँवकरः

× × × × × × ×

विषय-क्रम

1. आशीर्वाद एवं प्रेरणाएँ		3-6
2. प्राक्कथन		7-8
3. मौन साधना का एक मुखर स्वर : डीरेका के बंगाली बाबा	—श्री आलोक प्रियदर्शी	9-10
4. मानव-जीवन का परम इष्ट : नाद-साधना	—श्री विजय कृष्ण जोशी	11-12
5. हमें देखना है कि.....	—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरुंग'	13-15
6. संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि	—श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'	16-17
7. सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक हमारा शास्त्रीय संगीत	—डॉ० ऋत्विक् सान्याल	18-20
8. भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति	—डॉ० विमलामुसल गाँवकर	21-23
9. संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति : एक घातक विडम्बना	—स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति	24-25
10. संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय	—श्रीमती गिरिजा देवी	26-27
11. भारतीय संगीत में 'घराना' की अवधारणा	—डॉ० आदिनाथ उपाध्याय	28-30
12. भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा उसका गणितीय विश्लेषण	—डॉ० केदारनाथ भौमिक	31-38
13. भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन एक : विहंगम दृष्टि	—डॉ० कृष्णनाथ ओझा	39-42
14. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ		43-44
15. शिवकाली मन्दिर का शारदीय नौरात्र का सांगीतिक कार्यक्रम		45-46
16. एक सुमन—शुभाशीष की याचना में	—श्री शिव सेवक त्रिपाठी	—47

प्रभु अपने गीतों के पंखों से ही मैं तेरे चरणों का स्पर्श कर पाता हूँ। तू ऐसा वरदान दे कि एक ही प्रणाम में मेरा शरीर तेरे चरणों का स्पर्श कर ले।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

‘नादार्चन’ प्रवेशांक जिनको समर्पित है।



हमारे प्रेरणा स्रोत
ब्रह्मलीन पूज्य श्री बंगाली बाबा

‘नादार्चन’-विमोचन-कार्यक्रम के मुख्य अतिथि



**वाग्देवी की वरद सन्तान, दार्शनिक-साहित्यकार-युगद्रष्टा
श्रद्धेय डा० विद्यानिवास मिश्र**

डॉ. रे. का. परिवार के संरक्षक



हमारे महाप्रबंधक श्री रोमेश चन्द्र सेठी

विद्यानिवास मिश्र

कुलपति

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-221002

दूरलेख : 'श्रुतम्'

दूरभाष : { 43911 कार्यालय
43830 आवास

पत्र-संख्या 1330/9011/9

दिनांक 1-10-91

प्रिय श्री उपाध्याय जी,

यह बड़े हर्ष का विषय है कि शारदीय नवरात्र के पवित्र पावन पर्व पर आपने संगीत की भव्य स्मारिका नादार्चन के प्रकाशन का संकल्प लिया है। आपके इस सद्प्रयास के लिए मैं साधु-वाद देता हूँ।

आज के बदलते हुए परिवेश में शास्त्रीय संगीत के प्रति जो नवचेतना जगी है, वह वास्तव में इसके उज्ज्वल भविष्य का संकेत है।

मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य एवं आदर्श को ध्यान में रखकर इस स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है, वह सार्थक होगा। संगीत के जिज्ञासुओं एवं श्रोताओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

स्मारिका के सफल एवं सुन्दर प्रकाशन के लिए मेरी अनन्त शुभकामनायें हैं।

सस्नेह—

आपका—

(विद्यानिवास मिश्र)

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय,

सम्पादक—'नादार्चन,'

डोरेका, वाराणसी।

Dr. (Km.) Prem Lata Sharma

Retd. Prof in Musicology (BHU)

Ex-Vice-Chancellor, Indira Kala Sangit

Vishwavidyalaya, Khairagarh

BHARATA-NIDHI

[A trust for fundamental research in
performing arts]

Telephone : 312461

Date 30—9—1991

प्रिय उपाध्याय,

“नादार्चन” पत्रिका की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकानाएँ अर्पित हैं। भारतीय संगीत के प्रयोग-पक्ष के साथ-साथ उसके चिन्तन-पक्ष का भी अनुशीलन आवश्यक है। तभी पूर्णांग अनुशीलन सम्भव है। ‘शिव-काली मन्दिर संगीत समिति’ का यह प्रयास सराहनीय है। यह प्रयास सतत् चलता रहे, इस शुभकामना के साथ विरत होती हूँ। संस्कृति के पोषण में मन्दिर की मुख्य भूमिका हमारे देश में रही है। इस परम्परा का नवीन परिवेश में निर्वाह स्वागत-योग्य है।”

सम्पादन में सम्पूर्ण सफलता के लिए आशीर्वाद सहित—

तुम्हारी बहनजी,
प्रेमलता शर्मा

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय,

डी. रे. का. वाराणसी।

डॉ० (श्रीमती) एन. राजम्

दिनांक 6-10-91

डीन, संगीत एवं नाट्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शिव काली मन्दिर के तत्वावधान में, डी० रे० का० द्वारा 'नादार्चन' पत्रिका की प्रस्तुति पर हमारी कोटि-कोटि शुभकामनायें। प्राचीन काल से ही काशी नगरी संगीत एवं संस्कृति का केन्द्र रही हैं। यह नगरी आज भी उच्चकोटि के संगीतज्ञों, कलाकारों एवं शास्त्रज्ञों से सुशोभित है। संगीत के क्षेत्र में परिपूर्णता हेतु काशी में एक संगीतमय प्रकाशन की आवश्यकता थी। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि डी० रे० का० ने इस दिशा में कदम उठाया है। काशी की संगीत परम्परा को और सुदृढ़ बनाने में 'नादार्चन' का प्रयास अति सफल रहे - ऐसी मेरी शुभकामना है।

एन. राजम्

सम्पादक —

'नादार्चन'

डीरेका, वाराणसी।

रोमेश चन्द्र सेठी

महाप्रबन्धक,

डीजल रेल इन्जन कारखाना,
वाराणसी ।

दिनांक 15-10-91

श्री शिव-काली मन्दिर संगीत-समिति द्वारा आयोजित संगीत-सम्मेलन तथा उसके द्वारा प्रकाशित की जाने वाली संगीत-पत्रिका 'नादार्चन' की सफलता के लिए मैं कामना करता हूँ ।

इस प्रकार के सांगीतिक क्रिया-कलाप डी० रे० का० परिवार के सदस्यों की सृजनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने और सँवारने में विशेष योगदान देते हैं ।

मुझे विश्वास है कि नयी पीढ़ी के लिए यह आयोजन सांस्कृतिक एवं रचनात्मक गति-विधियों का एक बहुमूल्य स्रोत बनेगा ।

इस आयोजन के सहभागी विद्वानों, कलाकारों तथा कार्यक्रम के आयोजकों को अपनी शुभ कामनाएँ देता हूँ ।

सम्पादक

'नादार्चन'

शिव-काली मन्दिर संगीत समिति
डीरेका, वाराणसी

रोमेश चन्द्र सेठी

प्राक्कथन

बन्धूकाभां त्रिनेत्राममृतकरकलाशेखरां रक्तवस्त्रां ।
पीनोत्तुङ्गप्रवृत्तस्तनभरनमितां यौवनारम्भरूढाम् ॥
सर्वालङ्कारभूषां सरसिजनिलयां बीज संक्रान्तमूर्ति ।
देवीं पाशांकुशाभ्यामभयवरकरां विश्वयोनिं नमामि ॥
(बृहदेशी)

पूर्वपीठिका—पिछले दशक में शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों में जो नवचेतना जगी है, उसका प्रवाह देश के कोने-कोने में दृष्टिगोचर हो रहा है और ऐसे में सांस्कृतिक राजधानी काशी का तो कहना ही क्या ? काशी अर्थात् नाद-तनु शंकर की नगरी काशी जो आदि काल से ही संस्कृति एवं संगीत का केन्द्र रही है, आज भी एक प्रकाशस्तम्भ की ही भाँति आलोकित है। एक ओर यहाँ के विद्यालय-महा-विद्यालय-विश्वविद्यालय (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय आदि) तथा बनारस घराने के संगीत उपासक संगीत के प्रचार-प्रसार में सेवारत हैं तो दूसरी ओर यहाँ के मन्दिरों में फूलती-फलती संगीत परंपरा भी अपने नवीन कायाकल्प के साथ उभरकर सामने आयी है। श्री संकठमोचन मन्दिर में आयोजित कार्यक्रमों से तो हम परिचित ही हैं, काशी में ऐसे अनेक मन्दिर हैं जहाँ शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का नियमित आयोजन होता है और उन्हीं में से एक है—काशी की गोद में बसा डीजल रेल इंजन कारखाने का शिवमंदिर आज जिसे उसके नूतन कलेवर में शिव-काली मंदिर के रूप में जाना जाता है। डीरेका मूलतः रेल के डीजल इंजनों का निर्माण करने वाला एक औद्योगिक नगर है, परिवेश की दृष्टि से जिसे मशीन एवं इंजीनियरिंग का एक नीरस संस्करण ही कह सकते हैं, उत्तरोत्तर सांगीतिक चेतना का एक अग्रणी केन्द्र बनता जा रहा है। यह डीरेका ही है जो इस शिव-काली मंदिर के प्रांगण में शारदीय नौरात्र के अवसर पर प्रतिवर्ष संगीत के

राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम आयोजित करता आ रहा है और अब, संगीत की उसी चेतना को गतिमान करने के उद्देश्य से इस वर्ष से संगीत की यह पत्रिका भी प्रकाशित करने जा रहा है।

संगीत गोष्ठियों में सदैव ही यह उद्धृत किया जाता है कि 'कला के बिना शास्त्र लंगड़ा तथा शास्त्र के बिना कला अन्धी है' जो एक निर्विवाद सत्य है। इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक तो यह कि कला और शास्त्र एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध हैं दूसरे यह कि किसी कला को समझने के लिए जिस नेत्र की आवश्यकता होती है वह है, उसका शास्त्र। संगीत के साथ भी ठीक यही चरितार्थ होता है। अतः संगीत के प्रसंग में हम यह कह सकते हैं कि जितने परिमाण में हम संगीत के शास्त्र को समझेंगे, उसके ज्ञान-विज्ञान को समझेंगे उतने ही परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे और जितने परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे उतने ही परिमाण में सम्यक् दृष्टिकोण एवं सजगता के साथ संगीत का रसास्वादन भी कर पायेंगे। शिव-काली मंदिर के तत्त्वावधान में 'नादाचन' की यह प्रस्तुती अवधारणा के इसी आलोक में, संगीत को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की दिशा में एक आरम्भिक एवं लघु विनम्र प्रयास है।

विषयगत उल्लेख—नादाचन 'प्रवेशांक' की लेखमाला का शुभारम्भ शिव-काली मंदिर संगीत समिति के प्रथम संरक्षक

तथा हमारे प्रेरक स्रोत ब्रह्मलीन अनन्त श्री बंगाली बाबा के जीवन-परिचय से किया किया गया है। अन्य सभी लेख संगीत विषय से सम्बद्ध हैं। इन निबन्धों के माध्यम से एक ओर तो शास्त्रीय संगीत के स्वरूपगत ढाँचे को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर भारतीय संगीत की मूल चेतना को भी रेखांकित किया गया है क्योंकि जब तक हमारे अन्तः में यह बात भली भाँति बैठ नहीं जाती कि हमारे संगीत की 'आत्मा' क्या है तब तक हम संगीत के बोध से अभिज्ञ होकर भी उसके वास्तविक सौन्दर्य-बोध से अनभिज्ञ ही रह जायेंगे और 'संगीत कला' की चरम अनुभूति 'रसो वै सः' से भी वंचित रह जायेंगे। हमारे संगीत की चेतना का उत्स 'ब्रह्म' है तभी तो इसे नादब्रह्म कहा गया, स्वर ब्रह्म कहा गया। इसकी उत्पत्ति वेद (सामवेद) से कही गयी और उसी के अनुरूप भगवान् कृष्ण ने इसका माहात्म्य बताते हुए 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' स्वीकार किया। यह वही संगीत है जो देवताओं को भी प्रिय है—'गीतेन प्रीयते देवः', योगिराज कृष्ण ब्रह्मा तथा सरस्वती आदि सभी को इससे अनुराग है—'गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशंगतः। सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती'। आध्यात्मिक, धार्मिक एवं दार्शनिक भित्ति पर खड़ी यही हमारे संगीत की मूल चेतना है। मेरी समझ से भारतीय संगीत में पैठ का यह पहला और अनिवार्य चरण प्रतीत होता है इसीलिए इस धारणा की प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए प्रकारान्तर से हमारे लेखों में इसे विशेष स्थान दिया गया है।

यद्यपि संगीत के इस लघु प्रकाशन का आरम्भ मूल रूप से संगीत के जिज्ञासु श्रोताओं को ध्यान में रखकर किया गया है किन्तु संगीत के प्रयोक्ताओं के लिए भी यह कम महत्वपूर्ण नहीं होगा क्योंकि भाव-संप्रेषण के परिप्रेक्ष्य में प्रयोक्ता एवं श्रोता का भेद स्वयः ही समाप्त हो जाता है वहाँ तो श्रोता प्रयोक्ता के लिए तथा प्रयोक्ता श्रोता के लिए हो जाता है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में जिस समग्र दृष्टि से विषयों का चयन किया गया है, यह संगीत के विद्यार्थियों, शिक्षकों, समालोचकों तथा आयोजकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अपनी कोटि के एक नये प्रयास और उसमें भी समय की कठिन सीमाओं के कारण 'नादाचन' के इस अंक में अनेक त्रुटियाँ होंगी। इसे हमारी विवशता समझते हुए पाठक क्षमा करेंगे। साथ ही यह निवेदन भी करना चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में आप मुझे अपना अमूल्य परामर्श प्रदान करने की कृपा करेंगे ताकि नादाचन के भावी अंकों में इन त्रुटियों का सुधार किया जा सके।

आभार निवेदन—इतने अल्प समय में पत्रिका को यह स्वरूप देना मेरी शक्ति-सामर्थ्य के सर्वथा बाहर का काम था। इसे मैं प्रभु की असोम अनुकम्पा मानता हूँ और उस सर्वशक्तिमान को बारम्बार नमन करता हूँ। मैं ब्रह्मलीन पू० बंगाली बाबा तथा उन पू० गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा तथा प्रसाद से ही इस ज्ञान-यज्ञ की पूर्णाहुति 'नादाचन' के रूप में हुई। पत्रिका के संस्थापक भ्रातृ-तुल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनके प्रेरणा से ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ तथा जिन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा मुझे सम्पादन कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। मैं उन सभी गुरुजनों-विद्वानों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इतने अल्प समय में भी अपने सारगर्भित लेख प्रदान किये। इस अवसर पर मैं अपने उन विद्वज्जनों से क्षमा प्रार्थी हूँ जिनसे समयाभाव के कारण प्रस्तुत अंक के लिए लेख-सामग्री न ले सका। समय समय पर सम्पादकीय विचार विमर्श से सहभागिता तथा उत्साहवर्धन के लिए मैं श्रद्धेया डा० (श्रीमती) विमला मुसलागवाँकर को आभार व्यक्त करता हूँ। विम्ब-प्रतिविम्ब भाव से जुड़े मेरे एक निष्ठ सहयोगी एवं इस पत्रिका के सह सम्पादक भाई प्रमोद पाठक को अपना शुभकामनाएँ तथा धन्यवाद देता हूँ। श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह को उनके व्यवस्था सम्बन्धी सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। चि० अजय सिंह ने लेखकों से सम्पर्क-सूत्र के रूप में अपनी जो सेवाएँ अर्पित की उसके लिए उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। प्रेस कापी तैयार कराने में श्रीमती सत्यावती उपाध्याय (मेरी पत्नी) के सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में प्रकाशन की व्यवस्था के लिए शिव-काली मंदिर संगीत समिति को धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। 'नादाचन' के सफल मुद्रण के लिए 'खण्डेलाल प्रेस' तथा 'जयभारत प्रिंटिंग प्रेस' दोनों ही बघाई के पात्र हैं।

आदिनाथ उपाध्याय

मौन साधना का एकमुखर स्वर : डीरेका के बंगाली बाबा

• श्री आलोक प्रियदर्शी

बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी श्री आलोक प्रियदर्शी समाजशास्त्र से स्नातकोत्तर तथा उसके उपरान्त एल. एल. बी. करते हुए आज एक स्वयंसेवी पत्रकार तथा कुशल लेखक हैं। प्रस्तुत लेख में उपलब्ध सूचनाओं का संयोजन करते हुए श्री प्रियदर्शी ने पू० बंगाली बाबा के व्यक्तित्व को जिस रूप में उद्घाटित किया है वह आपकी अद्भुत लेखन-कुशलता का परिचायक है।

—सम्पादक

अध्यात्मवाद से भौतिकवाद तक की यात्रा का एक पड़ाव है, वाराणसी के पार्श्व में स्थित डीजल रेल इंजन कारखाना (डीरेका) जहाँ का जन-जीवन संचालित होता है साइरन के दुन्दुभिनाद से, और दिनचर्या का प्रारम्भ होता है इस्पात के कर्कश अट्टहास से तथा यन्त्रों के कर्णकटु निनाद से। सम्भवतः इस यांत्रिक नगर की उबाळ एकरसता को भंग करने के लिए ही भगवान् शिव ने अपने एक भक्त को वहाँ आने के लिए प्रेरित किया था, जिन्हें यहाँ के श्रमश्रुत लोगों ने अपनी सहजता और सरलता के भावोद्रेक में 'बंगाली बाबा' की संज्ञा प्रदान कर दी। आत्मीयता के इस सहज-सरल प्रवाह में वारिशाल में जन्मे 'श्री शिवनाथ बनर्जी' कब खो गये और 'बंगाली बाबा' कब प्रकट हुए वह बताना तो कठिन है परन्तु हमारे सामने बाबा की जो छवि उभरी वह तो विभिन्न भाषाओं, प्रदेशों जातियों, सम्प्रदायों की सीमाओं से परे अनेकता में एकता के उस अमूर्त सूत्र की थी जिसकी खोज में आज के नेताओं, राजनेताओं को विविध प्राणायाम करने पड़ रहे हैं। बंगाली बाबा स्नेह, प्रेम, कृपा, दया, क्षमा के ऐसे महासागर बन चुके थे, जिसमें गोता लगाकर मनुष्य देश-काल तथा परिवेश की परिधि से बाहर निकलकर अवसादहीन, स्फूर्ति का सृजन संगीत सुनने लगता था।

बाबा के एक अनन्य भक्त तथा स्वर के एकान्त साधक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय में प्राध्यापक श्री अजीत भट्टाचार्य के अनुसार बाबा का जन्म वर्तमान बंगलादेश के वारिशाल नामक स्थान पर हुआ था, परन्तु उनके परिवार तथा पूर्व परिवेश के बारे में भट्टाचार्य महो-

दय भी मौन ही हैं क्योंकि वे तो वाराणसी स्थित भारत धर्म सेवा-श्रम संघ में बाबा के प्रवास के दौरान उनके सम्पर्क में १९५२ में आये थे और तब से ही वे बाबा के गुरु गम्भीर व्यक्तित्व के सम्मोहन में बँधे उनके निकट से निकटतम होते चले गये। हाँ, श्री भट्टाचार्य ने इतना अवश्य बताया कि बाबा के ही शब्दों में भौतिक रूप से इस संसार में उनका कोई गुरु नहीं था किन्तु वे भावना से अपना आध्यात्मिक गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस को मानते थे। संगीत के साधक श्री भट्टाचार्य और संगीत उद्गम शिव-शक्ति के उपासक बाबा का सुर-ताल कुछ ऐसा मिला कि श्री भट्टाचार्य अपना पूर्व आवास छोड़कर बाबा के पास भारत धर्म सेवाश्रम संघ में ही रहने लगे। उन दिनों बाबा दिनभर देवी की उपासना में लगे रहते थे और सुबह शाम विद्यार्थियों को विद्यादान कर अपना जीवन-यापन करते थे, बिना दूसरों को खिलाए खाते भी नहीं थे, जबकि भट्टाचार्य जी अपनी संगीत-साधना में लगे रहते थे। संघ वालों को भट्टाचार्य जी की संगीत साधना भायी नहीं। परिणामतः बाबा ने भट्टाचार्य जी के साथ ही उस स्थान का त्याग कर यत्र-तत्र घूमते हुए गिरी-श्वर मंदिर (गिरा, वाराणसी) को अपना आवास बनाया। किन्तु यहाँ भी बाबा बहुत दिनों तक रुक नहीं पाये क्योंकि नियति उन्हें डीरेका शिव मंदिर तक पहुँचाने के लिये पूर्व पिठिका तैयार कर रही थी। इन्हीं दिनों डीरेका के श्री बी. डी. पाण्डेय, हरिमोहन टण्डन प्रभृति, बाबा के सम्मोहक व्यक्तित्व से परिचित हो रहे थे। हालाँकि गिरीश्वर मंदिर से डीरेका की दूरी मात्र ३-४ कि०मी० होगी परन्तु बाबा

को यहाँ पहुँचने में लग गये ३-४ वर्ष। करुणा के मूर्ति बाबा सुल्तानगंज कोठी की धर्म-परायण स्वामिनी रानी माँ का आमन्त्रण ठुकरा नहीं पाए और वहीं रहने लगे, परन्तु राजघरानों के षड्यन्त्रों में फँसो इस कोठी पर से रानी माँ का स्वामित्व समाप्त होते ही १९६१ के प्रारम्भिक दिनों में बाबा की डोरेका यात्रा प्रारम्भ हुई।

डोरेका के हृदयस्थल पर काँची-काम-कोटि पीठ के शंकराचार्यों द्वारा अर्चित यह शिव मन्दिर भी सम्भवतः बाबा की ही प्रतीक्षा कर रहा था। बाबा के इस मन्दिर में आगमन के साथ ही इस मन्दिर में संस्कृति-कला और अध्यात्म का इतिहास लिखा जाने लगा। यन्त्रों की कंकशता में भी अध्यात्म की सुमधुर ध्वनि गूँजने लगी।

इस प्राचीन शिव मन्दिर तक पहुँचने के पूर्व बाबा का सांनिध्य मिला था, डोरेका के सांस्कृतिक जीवन को अपने तबले के ताल पर थिरकाने वाले श्री बी. डी. पाण्डेय को। श्री बी. डी. पाण्डेय के अनुसार साधना के नीरस और कठोर मार्ग पर चलने वाले बाबा एक संवेदनशील व्यक्तित्व के स्वामी भी थे। एक पैर पर खड़े होकर घण्टों एक हाथ से उमरू तथा दूसरे से घण्टी बजाते हुए कठोर साधक, बच्चों के बीच हँसते खिलखिलाते एक संवेदनशील बालक, गुरुजनों और विद्वाओं के समक्ष नतशिर श्री पाण्डेय जी के विद्वान् पिता का चरण स्पर्श करते विनयी याचक, और अन्याय के प्रतिकार में परशुराम की तरह तने एक उन्मत्त नायक, बाबा की न जाने कितनी स्मृतियाँ श्री पाण्डेय जी के पास अनमोल धरोहर की तरह सुरक्षित हैं।

बाबा की शिवमन्दिर तक की यात्रा के एक अन्य साक्षी स्व. हरिमोहन टण्डन के पुत्र श्री दीपक टण्डन भी बाबा के स्नेहिल व्यक्तित्व से कम अभिभूत नहीं हैं बाबा के न रहने पर भी आज बाबा की स्मृतियाँ, उनका अलौकिक व्यक्तित्व इनके लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। बाबा की खिचड़ी के प्रसाद को वे अभी भी भूल नहीं पाते, न वैसा स्वाद उन्हें अन्य किसी व्यञ्जन में मिल पाता है।

श्री दीपक टण्डन ही नहीं बाबा के चुम्बकीय, करुणामय अलौकिक व्यक्तित्व से आज भी बँधे हैं श्री नीलम चतुर्वेदी भी जिनकी सायकिल पर बैठकर यहाँ वहाँ जाने में निरभिमानी बाबा को कभी संकोच नहीं हुआ। श्री चतुर्वेदी के अनुसार एकबार इनकी सायकिल पर बैठकर बाबा चौखम्भा स्थित

बंगाली डबोड़ी तक गये थे और वहाँ वे अपने साधना के प्रारम्भिक दिनों के परिचित किसी डाक्टर बाबू से मिले थे, जो लगातार बाबा से अपनी मृत्यु की याचना कर रहे थे। बाद में बाबा ने श्री चतुर्वेदी की जिज्ञासा शांत करते हुए बताया था कि ये डाक्टर बाबू कभी अपनी अतृप्त घनेच्छा के कारण मृत्यु से भीत होकर भयंकर अस्वस्थता भोग रहे थे। तब बाबा ने अपनी साधना के बल पर उन्हें उस यन्त्रणा से छुटकारा हो नहीं दिलवाया बल्कि इच्छा मृत्यु का वरदान भी दिया था, आज वही व्यक्ति मृत्यु की अपेक्षा कर रहा था। धन का एक मात्र सुख का साधन मानने वाला यह व्यक्ति धन की निस्सारता को समझ तो गया था पर उसकी मुक्ति तो थी बाबा के हाथों में। बाबा ने श्री चतुर्वेदी को बाद में यह भी बताया था कि जीवन का अन्तिम अनुष्ठान कर मैं इसे जीवन की इस यन्त्रणा से मुक्त कर दूँगा। और वही हुआ।

बाबा के अलौकिक शक्ति, उध्वंगामी चेतना और निस्पृह व्यक्तित्व के साक्षी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के रीडर डा० शिवकरण सिंह के अनुसार बाबा में भविष्यदर्शन का सामर्थ्य होने के बावजूद वे प्रकृति के नियमों को भंग कर किसी चमत्कार को प्रश्रय देने के सर्वथा विरुद्ध थे।

डोरेका इण्टर कालेज के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा लोगों में 'हरिओम्' जी के नाम से विख्यात श्री कमलापति मिश्र, बाबा के जीवन काल से ही शिव-शक्ति मंदिर में रागभोग की व्यवस्था करते आ रहे हैं। उन्हें बाबा में तन्त्र राजोक्त गुरु के सुमुख, सुन्दर, स्वच्छ, सुलभ, श्रद्धावान्, निश्चित आशयवाला, लोभ रहित, स्थिर-शरीर, प्रेक्षक आदि सभी गुणों का दर्शन एक साथ होता है।

संसार में रहकर भी सांसारिक प्रपंच एवं वंचनाओं से दूर बाबा २७ जून १९९१ को ब्रह्मलीन हो गये परन्तु मित-भाषी, मौन साधक बाबा का स्वर आज भी डोरेका के अनेक भक्तों के माध्यम से सांगीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक गतिविधियों में—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद् दुःखभाग भवेत् ॥

मन्त्र के साथ आज भी मुखरित हो रहा है।

मानव--जीवन का परम इष्ट नाद-साधना

ॐ श्री विजय कृष्ण जोशी

पेशे से व्यापारी होते हुए भी श्री विजयकृष्ण जोशी शैव-तन्त्र के उद्बुद्ध और प्रखर चिन्तक हैं। स्व० पं० रामेश्वर जी महोदय के अत्यन्त प्रियपात्र होकर शैव-दर्शन का आपने गहन अध्ययन किया है। प्रस्तुत लेख में श्री जोशी ने यह स्पष्ट किया है कि सम्पूर्ण सृष्टि ही 'नाद' का परिणाम है और यह सर्वत्र व्याप्त है, संगीत उस 'नाद' की ही एक सुसंस्कृत अभिव्यक्ति है। जिनकी साधना से हम अपने सम्पूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए नाद और इसकी साधना ही मानव जीवन का परम इष्ट है।

—सम्पादक

अथेति संस्पर्श-विहीमतत्त्वे तदात्मिके तत्प्रतिपादके च ।
सदैकरूपेण विजृम्भमाणं प्रारम्भपर्यन्तकथा कथं स्यात् ॥

शिव का एक रूप स्वेच्छा से प्रेरित ताण्डव में देखा जा सकता है। शिव के उस रूप में शक्ति के साथ उसका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सूक्ष्म से स्थूल तक नित्य रूप में सदा विद्यमान रहता है।

त्वं चन्द्रिका शशिनि, तिग्म-रुचौ रुचिस्त्वम् ।
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ॥
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्म ।
त्वं सारमेव निखिलम् त्वदृते यदि स्यात् ॥

इस अभेदावस्था में भी जो भेद दृष्टि है उसमें भी भगवती अपनी स्पन्दनात्मिका शक्ति के द्वारा विश्व वैभव को धारण करती हुई नित्यरूपा विराजमान है; यही नहीं, प्रकाश स्वरूप शिव के आधार पर नर्तन करते हुए यही काल-शक्ति के रूप में भी विराजती है। इस नित्य स्पन्दित-स्फुरण को ही अनहदनाद की संज्ञा से जाना जाता है।

नाद-विन्दु-लिपि-विग्रहा गिराः ।
तिष्ठ उर्ध्वग-विमर्श-शोकरा ॥
संसृति-स्थिति-विसृष्टि-धामसु
..... ईशवल्लभे ॥

प्राणीमात्र के हृदय में स्थित प्रकाश स्वरूप आप नाद-विन्दु, अक्षर, वाणी विग्रह आदि रूपों से शब्दात्मक सृष्टि-स्थिति-संहार करते हुए अपनी परा अपरा प्रकृति से संयुक्त हो ताण्डवशील हैं। यही शब्द ब्रह्म पदार्थ रूप में नृत्यात्मक गति ताण्डव द्वारा पञ्च भूतों में समाविष्ट होकर विजृम्भित होता रहता है। मूलतः यही संसार की सृष्टि स्थिति और संहार में नित्य कारण रूप से भी विद्यमान रहता है।

पञ्चभूतों के सान्निध्य से संरचित यह भवसागर भगवती का ही सकल स्वरूप है। नाद और शिव-शक्ति का पार्थक्य दर्शन सर्वथा अशक्य, अप्राकृतिक, अपारम्परिक तथा अवैज्ञानिक, ज्ञानशून्य मेघा का द्योतक है। नाद तो सृष्टि के मूल से प्रलयोपरान्त तक अनुभवगम्य, अनादि अनन्त है। नाद घोर निर्जन परमशांत शशिविहीन श्यामातिशयाम निशा में भी निरन्तर अविराम चलता ही रहता है। दिव्यचक्षु (त्रिनेत्र) सम्पन्न ऋषियों, महर्षियों, योगियों और महात्माओं को भी नादमय स्वयंस्फूर्त परमेश्वर की लीलाओं के दर्शन होते रहते हैं। सामान्य मानवीय चक्षु एवं हृदय-ग्राह्य ज्ञात-ज्ञात सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च नादमय एवं शिव शक्त्यात्मक ही है। स्फुरण और नाद सदैव साथ-साथ ही रहते हैं। स्फुरण चाहे लास्यात्मक हो, उपशांत हो अथवा संहारात्मक, बिना नाद के असंभव है। स्फुरण तो जड़ में भी होता है परन्तु वह सहज मानवीय ज्ञानसीमा से परे की बात है। नाद को चरमावस्था निर्विकल्प समाधि से भिन्न नहीं है।

मनुष्य निस्संदेह सृष्टि का श्रेष्ठतम जीव है, उसके जीवन को नाद और उसके नागर स्वरूप संगीत से अलग करने की कल्पना भी महान् अपराध ही होगी, क्योंकि इससे जीवन लयहीन, शुष्क और निरर्थक हो जायगा; वस्तुतः यद कल्पना भी कोरी कल्पना ही होगी। यह मनुष्य की ही सौन्दर्य और माधुर्य पिपासु रसानुसन्धानी आत्मा का सतत प्रयास है, जिसने नाद को संगीत का सुसंस्कृत स्वरूप दिया।

नाद और संगीत के सम्बन्ध को कई रूपों में समझा जा सकता है। नाद पिता है तो संगीत पुत्र; नाद सर्वव्यापी है, संगीत क्षेत्रीय सीमाओं में आबद्ध है; नाद महान् सघन अरण्य जैसा है, जबकि संगीत सुसज्जित बाटिका जैसा; नाद कुछ-कुछ शिव जैसा है तो संगीत कुछ-कुछ विष्णु स्वरूप। नाद निस्सीम है तो संगीत आबद्ध। रागों और तालों के अनुशासन में निबद्ध।

आज के लोक-युग में भी नाद और संगीत की वही छटा सर्वव्याप्त है। शांत झील का एक अपनी पृथक् सौम्य नाद होता है परन्तु वह महत्त्व की दृष्टि से महोदधि की गंभीर गर्जना से न्यून नहीं होता। आदिवासी हो, ग्रामीण हो, अति-आधुनिक मानव हो, संत हो, सैनिक हो—यह नाद स्वरुचि, स्वप्रकृत्यनुरूप सर्वप्रिय सर्वमान्य है। नाद पशुओं पर ही नहीं अपितु जड़ पर भी अपना प्रभाव तत्काल डालता है। हमारी संस्कृति 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' को उपासक एवं अन्वेषक है अतः हम ऐसे शाश्वत, कल्याणकारी एवं मनोहारी नाद को ही अपना परम इष्ट स्वीकार कर सकते हैं, जो पूर्ण शिव-स्वरूप हो, कल्याण जिसकी सहज कृपा हो, परमानन्द जिसका प्रसाद।

आधुनिक अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों ने भी मानव जीवन के लिये संगीत को अत्यन्त प्रभावकारी पाया है। उनके अनुसार शरीरगत पाँच प्राणों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है जिससे शरीर में भरी विषाक्तता के बाहर निकलने की क्रिया तीव्र होती है और प्राण ऊर्जा बढ़ती है। लन्दन के चिसित्सा विशेषज्ञों ने 'हास्पिटल एण्ड हेल्थ, मैन मैनेजमेण्ट' नामक पत्रिका में कहा है कि रूग्ण प्रकृति के व्यक्ति संगीत से बड़ी जल्दी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते हैं। इससे मानसिक तनाव दूर होता है, शान्ति मिलती है और स्वास्थ्य स्थिर रहता है। डा० बाल्टर एच० वालेस के कथनानुसार—'पीलिया, यकृत रोग और अपच में भी संगीत का सुनिश्चित विधेयात्मक प्रभाव पड़ता है।

—अखण्ड ज्योति मई '९१'

प्रयोग-प्रधान कलाओं के किसी भी तत्त्व का ऐतिहासिक या विश्लेषणात्मक अध्ययन 'लक्षण' के आधार के बिना तो हो ही नहीं सकता किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि लक्षण को समझना लक्ष्य में गहरी पैठ के बिना असंभव है।

—डॉ० प्रेमलता शर्मा

हमें देखना है कि.....

• डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग'

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संगीत एवं नाट्य कला संकाय में कंठ-संगीत विभाग के रीडर डॉ० दीक्षित उन सौभाग्यशाली लोगों में से हैं जिन्हें पं० ओंकारनाथठाकुर का शिष्य होने के साथ-साथ उनका पारिवारिक वात्सल्य भी प्राप्त हुआ है। 'सरस संगीत' जैसी कई अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों के सिद्धहस्त लेखक डॉ० दीक्षित, संगीत के प्रयोग एवं शास्त्र दोनों ही पक्षों में बराबर की रुचि रखते हैं। प्रस्तुत लेख में आप ने आज के सांगीतिक परिवेश की ज्वलन्त समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनके निराकरण का भी सुझाव प्रस्तुत किया है।

—सम्पादक

संगीतोद्धारक पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी, अनन्य संगीत प्रचारक पं० विष्णु नारायण भातखंडेजी तथा संगीत की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये जीवन पर्यन्त तप तपने वाले संगीतमार्तंड पं० ओंकारनाथ जी ठाकुर के अथक तथा अनवरत सत्प्रयत्नों के उपरान्त भी क्या बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में संगीत एवम् संगीतसेवियों की स्थिति सुदृढ़, सम्मानपूर्ण तथा सुव्यवस्थित हो पाई है ?

—नहीं।

आफ़तावे मौसिकी उ० फैयाज खाँ, पं० रातन-जनकर तथा पं० ओंकारनाथजी के भगीरथ प्रयासों के फलस्वरूप संगीत शिक्षा को विद्यालय, महाविद्यालय, विश्व-विद्यालय के स्तर पर एक विषय के रूप में मान्यता तो मिल गयी, संगीत-विषय लेकर सर्वोच्च उपाधि "डॉक्टरेट" मिलने लगी, किन्तु क्या वास्तव में संगीत-शिक्षक एवं संगीत के विद्यार्थियों को अन्य के समकक्ष माना जाता है ??

—नहीं।

आज प्रातःकालीन दूरदर्शन प्रसारण के जनगणना अंक के अनुसार भारत की जनसंख्या ८५ करोड़ से अधिक है। क्या सत्यनिष्ठा के साथ हम अखिल

भारतीय स्तर के ८५ कलाकार (गायक-वादक-नर्तक) भी गिना सकते हैं ???

—नहीं।

ललित कलाओं में मूर्धन्य "संजीव" ब्रह्म-साक्षात्कार का सोपान "संगीत", आत्माद, मनोरंजन तथा मनबहलाव का प्रमुख साधन "संगीत" अपने सिंहासन पर न सही किन्तु क्या सुखासन पर भी विराजमान है ? न सही, उसका भविष्य उज्ज्वल दीखता है ??

—नहीं।

अनेक प्रश्न हैं—अनेक समस्याएँ हैं—स्थिति निराशाजनक जान पड़ती है। क्या समस्याओं की करालता से आक्रान्त होकर निष्क्रिय हो जाएँ ? क्या हम प्रश्नों की जटिलता से निरुत्तर हो जाएँ ?? क्या मिलबैठ कर समाधान की दिशा में सोचने का उपक्रम छोड़ दें ???

—कदापि नहीं।

उपर्युक्त सारे प्रश्नों का एकमात्र उत्तर नकारात्मक है, नहीं में है। तो आइए आगामी कुछ पन्नों पर, विभिन्न स्तर पर, किन-किन को क्या-क्या सुधार करना हितावह है ? उस पर संक्षिप्त विचार कर लें, जिससे "सरस्वती प्रसाद"-संगीत की मर्यादा बनी रहे।

जैसे-जैसे संगीत क्रमशः सामान्य जन की परिधि में फैलता गया, ज्यों-ज्यों सुनने-सुनाने, सीखने-सिखाने के अवसर बढ़ते गये, जहाँ-जहाँ विषय का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होता गया वैसे-वैसे उसके स्तर में गिरावट आई, यह एक सामान्य धारणा है। सन् १९०१ में लाहौर में पं० पलुस्करजी द्वारा स्थापित प्रथम संगीत विद्यालय ने जन-सामान्य के लिये संगीत शिक्षा के द्वार खोल दिये तो १९०६ में राजकोट में पं० पलुस्करजी द्वारा आयोजित प्रथम संगीत सम्मेलन ने आम आदमी को संगीत सुनने का सुअवसर प्रदान किया। साथ ही इस शताब्दी के कुछ पूर्व से ही ग्रामो-फोन, फिर रेडियो, फिर चलचित्र, फिर टेप रिकार्डर फिर कैसेट प्लेयर, फिर टेलिवीजन जैसे वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा 'संगीत-संसार आपकी उँगली के इशारे पर' वाली स्थिति उत्पन्न हो गई। पढ़े लिखे लोग पं० भातखण्डेजी के शास्त्र-विषयक तथा प्रायोगिक पक्ष के ग्रन्थों के अध्ययन से जिज्ञासा शान्त करते हुए ज्ञान लाभ प्राप्त करने लगे। संगीत की इस सहज सुलभता के परिणाम स्वरूप प्रयत्न, लगन, निष्ठा तथा साधना में शिथिलता का आ जाना स्वाभाविक ही था।

मूर्धन्य कलाकारों का व्यावसायिक दृष्टिकोण बदल सकता है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब अत्यन्त अल्प मूल्य लेकर बड़े जन समुदाय को एक साथ चोटी के गायक या वादक द्वारा श्रोताओं को लाभान्वित करने हेतु सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा निजी प्रतिष्ठान प्रयत्न करें। सामान्य श्रोताओं को असामान्य कलाकारों से परिचित कराना, यह हमारा नैतिक कर्तव्य होना चाहिए।

जिन बड़े कलाकारों का पर्याप्त यश तथा धन-संवर्द्धन हो चुका है उन्हें चाहिए कि अपने विषय को जनहित की कामना से वर्ष में दो-तीन बार विभिन्न नगरों में निःशुल्क संगीत सेवा करें। गायन-वादन के उपरान्त सामूहिक संगीत शिक्षा दें। क्या सुने? कैसे सुनें? विषय की मर्यादा का निर्वाह कैसे हो? इत्यादि

बातों के अतिरिक्त परम्परा तथा क्रमिक विकास के साथ वर्तमान स्थिति का तालमेल बैठाने हुए अपने प्रभाव का भी सदुपयोग करें।

आयोजकों-संयोजकों को चाहिए कि प्रतिष्ठित, स्थापित कलाकारों के साथ-साथ उदीयमान प्रतिभाओं को अधिकाधिक अवसर प्रदान करें तथा गुटबाजी की राजनीति से पृथक् रहते हुए वास्तविक अधिकारी अंकुरों को फूलने-फलने दें। जमे हुए को यदि हजारों में तौल सकते हैं तो फिर जिनको जमना है उनका सैकड़ों सैकड़ों से तो पोषण करें ही। आयोजकों-संयोजकों को कोरी व्यावसायिकता से ऊपर उठना ही होगा।

व्यक्तिगत (Private) स्तर पर अध्ययन किये हुए छात्र-छात्राओं को उपाधि वितरण करने वाली संस्थाओं को चाहिए कि संगीत शिक्षा की समुचित व्यवस्था की ओर भी ध्यान दें मात्र परीक्षा की व्यवस्था करके ही अपने कर्तव्य की इति श्री न समझ बैठें।

वैसे दुर्बल तथा रोगी माता-पिता की सन्तान का दुर्बल तथा रोगी होना स्वाभाविक है (अपवाद को छोड़ दें) उसी प्रकार आवे-अधूरे, जो स्वयं असमंजस में हों तथा जिनकी स्वयं की शिक्षा में ठोसपन का अभाव हो वैसे संगीत शिक्षकों के विद्यार्थी समर्थ कैसे हो सकते हैं? इस विन्दु पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिये।

जिन विद्यालयों में, महाविद्यालयों में अथवा विश्वविद्यालयों में संगीत को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है अथवा विशुद्ध रूप से मात्र संगीत विषय को लेकर स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर तक का पठन-पाठन होता है वहाँ अधिकारियों को सुनिश्चित करना चाहिये कि, "विषय" को पढ़ाने का पूरा प्रबन्ध (उचित समय, उचित साधन तथा उचित शिक्षक) हों। मात्र विषय दिला देने से "संगीत" जैसे विषय में—(जहाँ योग्य दिशा निर्देश के बिना छात्र अपने से विकास नहीं कर सकता और जिसे "गुरु-मुखी" विद्या कहा गया है)—पर्याप्त प्रगति नहीं हो सकती।

विद्यार्थियों को भी समझना-स्वीकारना होगा कि, “विषय” मिल जाना ही अथवा कक्षा में उपस्थित हो जाना ही ‘संगीत’ सीखने के लिए पर्याप्त नहीं होता। माना कि अन्य विषयों की भाँति यहाँ पुस्तकों का अध्ययन अधिक नहीं है किन्तु शिक्षक के बताये हुए ढंग से गायन-वादन का अभ्यास करना बहुत आवश्यक है। बार-बार अभ्यास करने से ही “स्वाधीन कण्ठ” अथवा “सिद्ध हस्त” हो सकते हैं। अनेक विधानों को करके देखने पर ही गायन-वादन के समय सही चुनाव की क्षमता बढ़ सकती है। यहाँ धैर्य की भी आवश्यकता होती है। थोड़ा सीख लेने पर ज्यादा उछलने की प्रवृत्ति घातक भी हो सकती है। प्रारम्भ में ही झूठी-सच्ची “वाहवाही” मिल जाने पर अच्छे-अच्छे आशास्पद युवक-युवतियों के विकास को अवरुद्ध होते देखा गया है। “संगीत” का आकाश इतना ऊँचा है कि शीर्षस्थ व्यक्ति को भी अपनी अल्पता का बोध होता रहता है। उस अवस्था में अविकसित या अर्द्ध-विकसित पुष्पों का असमय कुम्हला जाना कितना स्वाभाविक है : “एक आग का दरिया है और डूब के जाना है”—‘जिगर’।

संगीत सीख रहे विद्यार्थियों के अभिभावकों को चाहिए कि “संगीत” विषय मिला है, दिलवाया है तो समुचित साधन भी जुटा दे। अभ्यास का अवसर भी प्रदान करें। तथा उन्हें मंच पर लाने की अनावश्यक त्वरा न करें। वैसे सीखने-सँवारने के साथ प्रदर्शन संगीत के क्षेत्र में लाभदायी होता है किन्तु योग्यता, परिपक्वता तथा भले-बुरे का विवेक हो जाने पर ही प्रदर्शन के लिये उत्साहित करें। समुचित प्रोत्साहन के साथ-साथ संतुलित आलोचना भी करते जाएँ। विषय की गहनता, असीमितता तथा उसके विवादास्पद होने की बातें भी बतायें। अज्ञानताका ज्ञान होना ही सच्चा ज्ञान है। सीमाओं की समानता ही सच्ची सिद्धि है।

श्रोताओं को संगीत के आस्वादन की दृष्टि से संगीत विषयक ज्ञान बढ़ाने की दिशा में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त श्रोताओं के लिए समय-पालन, कार्यक्रमों के समय अनुशासन तथा सुनने की मर्यादा का निर्वाह करना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है नवोदितों को योग्य प्रोत्साहन, पुरस्कार, पारिश्रमिक दिलाना; इसके लिए भी श्रोता वर्ग को सामने आना होगा।

यह वास्तविकता है कि संगीत एवं संगीतकारों का उपयुक्त सम्मान नहीं होता। यह विडम्बना है कि कुछ अनधिकारी, अधकचरे लोगों के कारण स्तर में गिरावट दीखती है; किन्तु सीमा तक यह भी सही है कि आज के विद्यार्थियों में लगन, निष्ठा, साधना तथा धैर्य का अभाव है किन्तु उसके लिये कुछ अंशों में राजनैतिक-सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ भी तो उत्तरदायी हैं। “साहिर” ने क्या खूब कहा है—

“जब तन पे कपड़ा होता है—

जब पेट में रोटी होती है।

उस वक्त ये जर्ज़ा हीरा है—

उस वक्त ये शबनम मोती है” ॥

स्थिति उतनी नाजुक भी नहीं, भयावह भी नहीं, अंधकारमय भी नहीं। आज सामान्य जन स्वर-लय को अधिक जानने-समझने वाला हुआ है। आज संगीत (शास्त्रीय, उपशास्त्रीय एवं सुगम) अधिक सरस, कल्पना से भरा तथा प्रयोग धर्मी हुआ है। आज सुनने-सुनाने के, सीखने-सिखाने के अधिक सुअवसर तथा सुविधाएँ (वैज्ञानिक उपकरणों आदि का सहयोग) प्राप्त हैं। आज का संगीत-सेवी जागरूक हुआ है तथा चिन्तन, भाषण, लेखन, विचार-विनिमय, गोष्ठियों के आयोजन आदि द्वारा स्थिति में सुधार लाने हेतु कृत संकल्प है, कटिबद्ध है, कार्यरत है।

भगवान् भूत-भावन से यही विनय है कि जो शूल है वे फूल हों तथा विघ्न सब निर्मूल हो। सबको सम्मति मिले तथा सर्वसम्मति से संगीत सेवा हो।

संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि

● श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'

'नन्दन जी' उपनाम से प्रसिद्ध श्री सिन्हा पं० ओंकार नाथ ठाकुर के शिष्यों में प्रमुख स्थान रखने के साथ ही उनकी गायिकी के अग्रिम संवाहक भी हैं। खयाल, ठुमरी, गजल आदि शैलियों पर आपका एक जैसा प्रभुत्व और इनकी प्रभावशाली प्रस्तुती श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती है। प्रस्तुत लेख में नन्दन जी ने मानव मन में विद्यमान उसकी मूलभूत अभीप्सा 'आनन्द' के परिप्रेक्ष्य में संगीत के योगदान को रेखांकित किया है।

—सम्पादक

अनन्त काल से मानव उस जीवन शैली की खोज में लगा हुआ है जिसके द्वारा उसे अक्षय आनन्द एवं शान्ति उपलब्ध हो सके। वह अपने को उस बिन्दु पर लाकर प्रतिष्ठित करना चाहता है जहाँ न कोई दुःख का अनुभव हो न मृत्यु पुकार सके। वह उस बिन्दु पर या उस बिन्दु से ऊपर अपने ज्ञान-भाव चेतना को प्रतिस्थापित करना चाहता है जहाँ से आनन्द की अधोगामिता के लिये कोई सम्भावना नहीं और जहाँ उसकी उर्ध्वगामिता की सातत्यता बनी रहती है। मानव उस अन्तरिक्ष बिन्दु की खोज में है जहाँ वह सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश, आनन्द ही आनन्द के प्रवाह में प्रवाहित होता रहे। अपनी इस खोज की प्रक्रिया में मानव ने ऐसी ध्वनियों को भी खोज निकाला जिसे सुनकर वह आनन्दित हो सके और यहाँ तक कि जब आघात के द्वारा उत्पन्न ध्वनि सुनने को न मिले तो अनाघात की स्थिति में भी वह मन के अन्तस्थल में बैठे रसात्मक ध्वनियों की लहरियों से तरंगित होता रहे। इसी प्रक्रिया में धीरे-धीरे मानव ने अन्तर्मुखी होकर अन्तर्जगत में जीने की कला सीखी। इसी कला को हमने आध्यात्म की संज्ञा दे दी। इसका आनन्द विराट है, अक्षय है, स्वावलम्बी है, परावलम्बी नहीं। इसका आनन्द अगाध है, समस्त

कुण्ठाओं से मुक्त। परन्तु यह आनन्द सन्तुलन का है जिस सन्तुलन के आधार पर संगीत धरती पर अवतरित हो सका जिनकी शक्ति से ध्वनियाँ हमें आकर्षित करती हैं और हमारे असन्तुलित जीवन को व्यवस्थित कर सुखदायिनी बनाती हैं। सन्तुलन ही स्वर की अन्तः शक्ति है, उसका मूल आधार स्तम्भ। सन्तुलन ही अन्तः प्रज्ञा का स्वरूप है। संगीत के इस सन्तुलित दर्शन ने ही कई शताब्दियों तक संगीत कला के प्रति हमारी एक विशिष्ट धारणा का पोषण किया जो आज भी कहीं-कहीं, किसी के पास सुरक्षित है। उसी धारणा से प्रभावित हो हमारे अनेक मनीषियों ने, अनेक उच्चस्तरीय कला एवं साहित्य के साधकों ने, प्रबुद्ध शिल्पकारों ने, योगियों एवं युगावतारों ने, उच्च-स्तरीय साधकों एवं चिन्तकों ने संगीत कला को या तो आध्यात्मिक चेतना के गन्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है अथवा आध्यात्मिक चेतना जगत में प्रविष्ट एवं प्रतिष्ठित होने के लिये सबसे सहज और सबल मार्ग सबसे उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ माध्यम के रूप में वरण किया है। आध्यात्मिक जगत में इस बात की मान्यता है कि प्रत्येक प्राणी के अन्तर में देवशक्ति बीज के रूप में प्रतिष्ठित है। उस शक्ति को पूर्ण रूप से प्रभावित कर व्यक्ति में "ऋषि चेतना" या "भागवती चेतना"

प्रदान करना संगीत का धर्म है। संगीत हमारे अन्तर्जगत के परिष्कार एवं उसके आध्यात्मिकरण का सहज एवं सशक्त साधन है। आध्यात्मिक उपलब्धियों को अक्षुण्ण बना कर रखना भी इसी प्रज्ञा-भाव-चेतना-समन्वित नाद (सांगितिक ध्वनियों) का परम कार्य है। संगीतोपयोगी ध्वनियों को नादरूप में प्रतिष्ठित कराने में संगीत के उस विशिष्ट पक्ष का योगदान रहा है जिसके द्वारा जीव परमात्मा के विराट् स्वरूप में मिल जाता है जो भारतीय दर्शन के परिवेश में जीवन का परमोद्देश्य है। भारतीय जीवन दर्शन में जीवन की सार्थकता तभी मान्य है जब जीव को आध्यात्मिक आलोक और चेतना की उपलब्धि हो जाय।

संगीत भागवत जीवन का आध्यात्मिक अवलम्ब है। संगीत को ऋषियों ने “ऋत दृष्टि” या “आत्मोपम्य दृष्टि” की मेरुदण्ड माना है और इन दृष्टियों से उद्भूत किसी की भाव चेतना स्थिति एवं उसके कार्य-कलापों का माप दण्ड भी किसी भी व्यक्ति द्वारा संगीत के लिये किया गया पुरुषार्थ उस व्यक्ति को लोकोपगामी एवं अपकर्षण कराने वाले समस्त वृत्तियों से मुक्त कराने वाला है। संगीत क्लुषित भावनाओं के लोक में स्थित मनः चेतना को मुक्ति दिलाकर चेतना को उस लोक में प्रतिष्ठित करता है जहाँ सौन्दर्यबोध, आध्यात्मबोध की अभिव्यञ्जना है।



गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते ।
 गीतं च वादनं नृत्तं तद्देशीयभिधीयते ।
 नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गोतानुवर्त्ति च ॥
 अतो गीतं प्रधानत्वादनन्नादावभिधीयते ।
 सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः ॥
 गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पर्वतीपतिः ।
 गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः ॥
 सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणाऽऽसक्ता सरस्वती ।
 किमन्ये यक्षगन्धर्वदेवदानवमानवाः ॥
 अज्ञातविषयास्वादो बालः पर्यङ्किकागतः ।
 रुदन्गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥
 बनेचरस्तृणाहारश्चित्रं मृगशिशुः पशुः ।
 लुब्धो लुब्धकसंगीते गीते यच्छति जीवितम् ॥
 तस्य गीतस्य माहाऽऽत्म्यं के प्रशंसितुमीशते ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम् ॥

संगीत रत्नाकर

सम्पूर्ण जीवन दर्शन का प्रतीक—हमारा शास्त्रीय संगीत

● डा ऋत्विक् सान्याल

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गायन विभाग के प्राध्यापक डा० ऋत्विक् सान्याल देश के प्रतिष्ठित ध्रुपदगायक हैं। आपने ध्रुपद का गूढ़ प्रशिक्षण विख्यात बीनकार तथा गायक उस्ताद जिया मोहिउद्दीन डागर तथा उस्ताद जिया फरीदुद्दीन डागर से प्राप्त किया है। आपने Philosophy of Music ग्रन्थ रचना के अलावा कई सम्मेलनों में तथा विदेश यात्राओं में ध्रुपद गायिकी व गोष्ठियों में भाग लिया है। प्रस्तुत लेख में डा० सान्याल ने हमारे शास्त्रीय संगीत को सम्पूर्ण जीवन दर्शन का प्रतीक बताते हुए एक उपयोगी चर्चा प्रस्तुत की है।

—सम्पादक

भारतीय अवधारणा के अनुसार संगीत अनादि काल से ही सृष्टि के कारण रूप में ही नहीं अपितु जीवन के सभी पहलुओं में ओत-प्रोत रहा है। 'नाद' से विश्व ब्रह्माण्ड बना, ब्रह्म का निर्विकार रूप साकार हुआ वही 'स्पन्द' आनन्द रूप में जगत् के जड़ से चेतन तक, कण-कण में व्याप्त हुआ।

यहाँ, 'हमारा संगीत' से हमारा आशय भारतीय संगीत यानी हमारे शास्त्रीय संगीत से है। प्रश्न उठता है, शास्त्रीय संगीत का 'निमित्त' क्या है? इसका उत्तर निश्चित रूप से 'नाद' में है। जिसका प्रकटीकरण 'शब्द' 'काल' एवं 'वाक्' के माध्यम से होता है। एक संगीतोपासक या संगीत कलाकार 'नाद' से 'राग' का सृजन अपनी प्रतिभा से करता है। 'राग' के तीन प्रमुख घटक 'स्वर' ताल और 'पद' हैं। शब्द से 'स्वर', 'काल' से 'ताल' और वाक् से 'पद' का

सृजन होता है और इस प्रकार अमूर्त 'नाद' से मूर्त 'राग' बनता है।

उद्देश्य, रस निष्पत्ति—लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं होती। शास्त्रीय संगीत का उद्देश्य है—राग विशेष के द्वारा एक सौन्दर्य स्वरूप की खोज, जिससे चित्त का रंजन हो, रस-निष्पत्ति हो। यथार्थ तो यह है कि 'स्वर' की व्यंजना ध्वनि अथवा अनुरणन में, 'ताल' की व्यंजना 'छन्द' में, पद की व्यंजना 'अर्थ' में, और राग की व्यंजना रस में निहित है। नाद, राग और रस का आश्रय यानी कर्त्ता, (कवि, शिल्पी कलाकार); ज्ञाता (समालोचक, संगीत शास्त्री) और भोक्ता (प्रेक्षक श्रोता, रसिक) हैं और इन तीन स्तरों पर कलावस्तु का सृजन, मनन और रंजन होता है इसे सूत्र बद्ध रूप में यूँ भी कह सकते हैं—

विषय

निमित्त— नाद—शब्द + काल + वाक् —
बंध— राग—स्वर + ताल + पद —
हेतु— रस—ध्वनि + छन्द + अर्थ —

आश्रय/विषयी

कर्त्ता ज्ञाता भोक्ता— कारण
अवधान— क्रिया
उपलब्धि— कार्य

राग संगीत—हमारे शास्त्रीय संगीत की आत्मा
राग—संगीत से जुड़ी हुई है, यहाँ तक कि शास्त्रीय

संगीत को यदि राग-संगीत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। 'राग' में संगीत के कलापक्ष तथा भाव-

पक्ष दोनों के ही विस्तार की गुंजायश विद्यमान है। नाद-श्रुति-स्वर-वर्ण अलंकार—ग्राम—मूर्च्छना-जाति-गमक-स्थाय आदि चरणों से होकर इन्हें अन्तस्थ करते हुये राग साकार होता है। राग का स्वरूप स्वर-सन्निवेश से तो बन जाता है लेकिन उसका आदर्श स्वरूप उस राग के 'रागत्व' से ही बनता है। इसके लिए शास्त्रीय नियमों तथा सौन्दर्य बोध का पालन आवश्यक होता है। जैसे मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् ही उसकी पूजा होती है, वैसे ही रागत्व तथा व्यक्तित्व से युक्त होकर ही राग उसके वास्तविक प्रस्तुतीकरण के योग्य बनता है।

राग का प्रस्तुतीकरण गीत तथा वाद्य के भिन्न-भिन्न बन्धों—ध्रुपद खयाल आदि से होता है। स्वर-ताल-पद को सम्पूर्ण रूप में हमारी संगीत-परम्परा में गीत-वाद्य-नृत्य अथवा गान-वाद्य-नाट्य के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। हमारे यहाँ गायन तथा वादन परम्परा में कोई पारस्परिक द्वन्द्व नहीं रहा है, दोनों एक दूसरे के पूरक तथा प्रतिबिम्ब हैं। नाट्य शास्त्र में कहा है कि उपर्युक्त इन तीनों के अलाव चक्रवत् संयोग से संगीत पूर्ण होता है। वस्तुतः यह नाट्य के प्रसंग में कहा गया है।

गान का महत्त्व—यद्यपि संगीत में 'गान' एक तकनीकी पद है, किन्तु यहाँ हमने इसका प्रयोग व्यापक अर्थों में लिया है। गान का महत्त्व अनादि काल से ही स्वीकृत है। पुराण में कहा गया है—एक कोटि पूजा एक ध्यान के बराबर है एक कोटि ध्यान एक जप है, और एक कोटि जप एक गान के बराबर इससे परे कुछ नहीं है। हमारी परम्परा में आरम्भ से ही गायन का अनुकरण और उपरंजन वादन का हेतु रहा है। वस्तुतः इस बीच पिछली सदी से वाद्यों की स्वतन्त्र वादन शैली का भी विकास हुआ है। फिर भी इनके प्रस्तुतीकरण की कुछ अपनी सोमाएँ हैं। यथार्थ तो यह है कि स्वतन्त्र वाद्य-वादन में भी किसी न किसी रूप में गायन सह सम्बद्ध रहता ही है।

स्वर की प्रमुखता—शास्त्रीय संगीत में स्वर को ही प्रमुख माना गया है। नाद से जब स्वर उत्पन्न होता है तो स्वर की सृष्टि तथा सूक्ष्मताओं की सौन्दर्यात्मक अभिव्यंजना हर कलाकार का लक्ष्य होता है। इसलिए लक्षणा तथा लक्ष्य परम्परा में स्वर पक्ष पर सबसे अधिक विचार किया गया है।

ताल पक्ष—ताल का प्रयोग सांगीतिक माप के लिए किया जाता है। काल-तत्त्व संगीत का एक अनिवार्य घटक है। लय, क्रिया और ताल से काल की एक विशेष आकृति बनती है और यही काल-तत्त्व संगीत को दृश्य कलाओं से पृथक् करता है। स्वर की प्रतिष्ठा ताल से होती है। पाश्चात्य दार्शनिकों ने इसी अवधारणा के अनुरूप ताल के ही परिप्रेक्ष्य में संगीत को 'टेम्पोरल आर्ट', 'बर्चवल टाइम' और 'टोनल मोशन' कहकर परिभाषित किया है। संगीत में ताल के साथ उसका छन्द भी आस्वाद्य होता है। जो व्यक्ति ताल की क्रिया को कदाचित् न भी समझता हो वह उसके छन्द से भी आनन्द प्राप्त कर सकता है।

पद पक्ष—'वाक्' तत्त्व से उद्भूत 'पद'—संगीत का एक प्रमुख तत्त्व है। अपितु स्वर संघात के लिए पद एक अनिवार्य घटक है। स्वर एवं ताल का आधार पद है, दूसरी ओर स्वर का उच्चारण भी पदाश्रित ही है। जिस प्रकार जल का आधार उसका पात्र है, उसी प्रकार स्वर अथवा स्वर-संघात का आधार पद होता है। सार्थक पद तो सार्थक हैं ही संगीत में निरर्थक वर्ण, पद या शुष्काक्षर भी सांगीतिक विशेषताओं की अन्विति से 'सार्थक' हो जाते हैं।

शैली तथा घराना—नियमबद्धता तथा रस-सिद्धांत शास्त्रीय संगीत के शाश्वत और अविनाशी तत्व हैं। हमारे यहाँ युगों से यही अवधारणा हमारे जीवन-दर्शन के मूल सिद्धांतों से जुड़ी चली आ रही है क्योंकि यह अपने वैचित्य एवं गतिशीलता के कारण गायन-वादन की शैलियाँ और सम्प्रदाय परिवर्तनशील हैं। 'शैली' दो प्रकार की हो सकती है—

(i) गोष्ठी-शैली (Group style) या सम्प्रदाय जिसको संगीत में 'वानी' या 'घराना' कहा जाता है।
 (ii) व्यक्ति-शैली। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कोई कलाकार किसी वानी या घराने का अनुयायी होकर भी अपनी कलाकारी और प्रतिभा से एक व्यक्ति-शैली का सृजन कर सकता है। भारतीय संस्कृति में 'शाश्वत' और 'परिवर्तन' में कोई द्वन्द्व नहीं है। नियम बद्धता के बावजूद हमारे शास्त्रीय संगीत में जो व्यक्ति स्वातन्त्र्य है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। 'शाश्वत' अमूर्त है और परिवर्तन' मूर्त। लेकिन ब्रह्मा के असीम रूप का बोध 'ससीम' कलावस्तु में ही होता है। यह हमारी संस्कृति की विशेषता है और इस रूप में संगीत ब्रह्मज्ञान का एक उत्कृष्ट सोपान है।

बंध विधाएँ—आज गायन-वादन के अनेक बंध प्रचलित हैं। ध्रुपद, खयाल, ठुमरी, दादरा, टप्पा... आदि। शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद और खयाल का स्थान प्रमुख है किन्तु कुछ सीमाओं के कारण इस लेख में इनका विवरण सम्भव नहीं, इसके लिये एक अलग लेख आवश्यक होगा। हा, दो शब्द 'ध्रुपद' पर कहना इसलिए क्रमप्राप्त होगा क्योंकि 'ध्रुपद' हमारे शास्त्रीय संगीत का मापदण्ड है।

'ध्रुपद' सिर्फ एक गायन-शैली ही नहीं, अपितु शास्त्रीय संगीत की एक सम्पूर्ण पद्धति है। आज भी बंगाल में 'ध्रुपदी' साहित्य, 'ध्रुपदी' स्थापत्य' इस तरह की किसी भी कला के शास्त्रीय तथा सर्वोच्च प्रयोग के लिए ध्रुपद संज्ञा का प्रयोग किया जाता है। इसका क्या कारण है? शायद इसीलिए कि मात्र ध्रुपद बंध में ही स्वर-ताल-पद का पूर्ण प्रयोग होता है। आज मौखिक परम्पराओं में सबसे प्राचीन और विशुद्ध संगीत परम्परा ध्रुपद ही है जिसका प्रयोग सिर्फ गायन ही नहीं, वादन (रुद्रवीणा, सुर-बहार...) में भी होता है ध्रुपद के 'आलाप' में स्वर

पक्ष का पूर्ण विकास होता है। इसमें राग का विस्तार सुसम्बद्ध रूप से किया जाता है। ध्रुपद की प्रस्तुती में राग की प्राण-प्रतिष्ठा के साथ-साथ रागदारी, स्वर श्रुति की सूक्ष्मताओं का निदर्शन आदि पूजाभाव से किया जाता है। कलाकार 'ध्रुपद' में स्वर का शृंगार भक्ति भाव से करते हैं। ताल का विशिष्ट तथा वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग भिन्न-भिन्न लयकारियों के माध्यम से ध्रुपद में किया जाता है। ध्रुपद में पदों का अनन्त भण्डार है जिससे 'लय' और 'ताल' का अनायास प्रयोग इन सुन्दर पदों के द्वारा सहजता से होता है। ध्रुपद के पदों का साहित्यिक पक्ष भी बड़ा समृद्ध है; देव-स्तुति, राज-स्तुति, प्रकृति-वर्णन, निर्गुण पद तथा संगीत व नाद के लक्षण इन ध्रुपद रचनाओं की सामान्य विषय-वस्तु हैं। किसी भी अन्य गायन-बंध में पद का इतना संकलन उपलब्ध नहीं होता जितना ध्रुपद में है। भक्ति और आध्यात्म से जुड़े रहने के कारण ध्रुपद गायन से दृष्ट-अदृष्ट दोनों फलों की प्राप्ति होती है। अतएव ध्रुपद को शास्त्रीय संगीत का एक मानक एवं आदर्श बंध कहा जा सकता है।

इस सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात् शास्त्रीय संगीत को स्वरूप निर्धारण में, उसे निम्नवत् परिभाषित भी किया जा सकता है। परिभाषित करने में न्यूनतम निम्नांकित बिन्दुओं को आधार स्वरूप ग्रहण किया जाना चाहिए—'शास्त्रीय संगीत वह संगीत है जो संगीत की लक्षण-लक्ष्य परम्परा के अनुकूल हो; जो नियमबद्ध, संयत-व्यवस्थित हों; जो अग्राम्य, दोषरहित और संतुलित हो; जो अन्य रसों से गुजरते हुए भी भक्ति और शान्त में समाहित हो और जो मोक्षवादी संस्कृति एवं ब्रह्मज्ञान के सर्वोच्च सोपान पर अग्रसर कराने में सफल हो'

और तब, यह सहज ही सिद्ध है कि हमारा संगीत सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक है।

भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति

डॉ० विमला मुसलगाँवकर

डॉ० विमला मुसलगाँवकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (संगीत एवं मंच कला संकायान्तर्गत संगीत शास्त्रविभाग, की सेवानिवृत्त प्राध्यापिका हैं। भारतीय संस्कृति का दर्शन-मूलक अध्ययन आप के चिन्तन-लेखन का मूल केन्द्र रहा है। योग, दर्शन साहित्य एवं संगीत विषयों पर आप के महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ लेखिका ने अत्यन्त युक्तिपूर्ण ढंग से यह समझाने का यत्न किया है कि संगीत ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष मानव-जीवन के यह चारों पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।

—सम्पादक

‘श्रेय’ तथा ‘प्रेय’ ही ये दो मूलभूत इष्ट मानव को अभिप्रेत हैं। आनन्द या सुख की प्राप्ति भी इन्हीं दो माध्यमों से होती है। इनको पाने के लिये जो चेष्टा अथवा प्रयत्न होता है उसे ही भारतीय मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अन्तर्गत कर चार-पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया है। इनकी ‘त्रिवर्ग’ धर्म-अर्थ और काम और अपवर्ग मोक्ष की संज्ञा भी है। यह विभिन्न दर्शन साहित्य कला आदि में ‘भुक्ति’ तथा ‘मुक्ति’ नामों से भी कहे गये हैं। यही लोक के ‘भोग’ और ‘मोक्ष’ भी हैं। यही ‘भवभंजन’ और ‘जनरञ्जन’ हैं। अब प्रश्न उठता है कि यह क्या है ?

धर्म—जो आचरण या कर्म उचित है साथ ही मानव मात्र के कल्याणार्थ है वह “धर्म” है। तात्पर्य यह कि जो मनुष्य की मानवता के धारक कर्म हैं वही ‘धर्म’ है। शाश्वत सनातन सत्यों पर आधारित कर्म भी धर्म है जो मानव मात्र के विकास एवं उद्धार हेतु है। निष्कर्ष यह है कि जन-मानस मात्र के विवेक से जुड़ा है—धर्म।

अर्थ—यह पद धन के लिए रूढ़ है, वैभव, समृद्धि, मूल्य मापक प्रतीक के अर्थ में अथवा ‘पदार्थ’ के रूप में इसे समझा जाता है। जनमात्र की यह वह

शक्ति है जो कुछ भी इससे क्रय कर सकती है केवल मृत्यु और जीवन को छोड़कर, क्योंकि कोई भी धनाढ्य मरण और जीवन को किसी पैसे वाले को बेच या खरीद नहीं सकता। यह मानवमात्र की आदान-प्रदान की क्रिया-शक्ति से जुड़ा है। जिसका उपयोग ‘धर्म’ में भी होता है।

काम—यह शब्द इच्छा, वासना में रूढ़ है। ऐहिक या भौतिक सुख से सम्बन्धित है। उचित-अनुचित का विचार यहाँ प्रधान नहीं है। येन-केन-प्रकारेण केवल नयी-नयी इच्छा पूर्ति करना यही इसका लक्ष्य है। पूर्वोक्ति धर्म-अर्थरूप पुरुषार्थों के लिए उठी जनमानस की ‘इच्छा शक्ति’ से ‘काम’ पुरुषार्थ जुड़ा हुआ है।

मोक्ष—यह आत्मसाक्षात्कार का ही पर्याय है। अपने वास्तविक ‘स्व-स्वरूप’ का ज्ञान ही ‘मोक्ष’ है। तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्द रूप ‘परम तत्त्व’ का ही एक अंश है—जीव; इसका बोध होना ही ‘मोक्ष’ है। यह पुरुषार्थ जीवमात्र के ‘स्व-स्वरूप’ से जुड़ा है। एक चेतन सत्ता इस चराचर जगत् में व्याप्त है, उसी से जीव-जगत् सत्तावान् और क्रियावान् है।

रस या आनन्द ही जीव मात्र का प्राप्तव्य है। रस जड़ नहीं, चेतन तत्त्व है। कला के माध्यम से उस रस या आनन्द की सृष्टि मानव करता है। प्रमुख चौसठ कलाओं में से संगीत—(गीत-वाद्य-नृत्य) सर्वश्रेष्ठ कला है। लोक-जीवन संगीत से व्याप्त है। चाहे महोत्सव, पर्व, यात्रा, मंगलकार्य, युद्ध या कोई संस्कार या पूजा हो हर अवसर पर संगीत की स्वर-लहरियाँ गुँज कर बिखर जाती हैं, वाद्य ठनक उठते हैं और धुँधरू बज उठते हैं, अमृत-वर्षी, लोक-व्यापी इस कला में 'स्व-स्वरूप' का साक्षात्कार कराने की अपूर्व शक्ति है। 'आनन्द' तो आत्मस्वरूप ही है। चारों पुरुषार्थों की दृष्टि से संगीत का महत्त्व निर्विवाद है।

संगीत कला के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए भारतीय संगीत शास्त्र ने तो यहाँ तक कह दिया है कि 'धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम्' संगीत-संहिता में इसकी सर्वश्रेष्ठतापर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि पूजा से कोटि गुण श्रेष्ठ ध्यान है, ध्यान से कोटिगुण श्रेष्ठ जप है, जप से कोटिगुण श्रेष्ठ गान है गान से श्रेष्ठतर और कुछ भी नहीं है। कमलयोगिन् ब्रह्मा ने चार वेदों का सार खींचकर पञ्चम वेदरूपी संगीत प्रकट किया है।^१ संगीत की आधिदैविकता के कारण उत्पत्ति ही महत्त्वपूर्ण नहीं है किन्तु उसके प्रभाव से देवगण भी अछूते नहीं हैं। यह भी उसका एक प्रबल पक्ष है। संगीत-दर्पण (११२) में वाग्देवी के द्वारा संगीत के प्रभाव का उल्लेख है। 'नादाब्धि' के दूसरे तट पर देवी सरस्वती भी नहीं जा पातीं। उसमें डूब जाने के भय से आज तक अपने वक्षःस्थल पर तुम्बी लिए फिरती हैं।^२

१. पूजाकोटिगुणं ध्यानं, ध्यानात् कोटिगुणो जपः ।
जपात् कोणिगुणं गानं गानात् परतरं न हि ॥
पूर्वं चतुर्णां वेदानां सारमाकृष्य पद्मभूः ।
इदन्तु पञ्चमं वेदं संगीताख्यमकल्पयत् ॥
२. नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती ।
अद्यापि मज्जनभयास्तुम्बीं वहति वक्षसि ॥
संगीत-दर्पण ११२

जीवन का सच्चा सुख वस्तुगत नहीं, अपितु आत्मगत है। धर्म अर्थ और काम, ये लौकिक पुरुषार्थ हैं, किन्तु 'मोक्ष' अलौकिक पुरुषार्थ है। इसीलिए उसे 'परम पुरुषार्थ' कहा जाता है। लौकिक पुरुषार्थों की प्राप्ति करने के पश्चात् मनुष्य की प्रवृत्ति अलौकिक पुरुषार्थ को पाने की स्वाभाविक रहती है; क्योंकि 'स्व-स्वरूप' की प्राप्ति 'मोक्ष' कहलाता है। भला, उसे कौन नहीं चाहेगा ? उसकी प्राप्ति भी इस संगीतकला की साधना से हो जाती है; इसे संगीत शास्त्रकार, संगीत प्रयोक्ता और सहृदय संगीत श्रोता सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं, और अनुभव करते हैं।

सकल जीवों में से केवल मनुष्य में ही आनन्द-मय कोष का विकास होता है। संगीत उसी प्राकृतिक आनन्दभाव का नैसर्गिक उच्छ्वास है। इसीलिए 'लोक-चित्तरंजन' करना ही संगीत का 'मुख्य' उद्देश्य है। भाव में भावान्तर लाना, अभाव में भाव उत्पन्न करना हंसाना, रलाना, चञ्चल मन को शान्त कर देना, नाद की सहायता से आदिनाद में पहुँचा देना, रस की सहायता से 'रसरूप परमात्मा' के परम पद को प्राप्त करा देना यही इस सङ्गीतकला का मोक्षरूप लक्ष्य है—क्योंकि गीत, वाद्य, नृत्य तीनों का ही साधारण गुण 'लोकरञ्जन' है। अतः जिस सङ्गीत में आकर्षण शक्ति नहीं है वह सङ्गीत कहलाने योग्य ही नहीं है—“गीतवादित्रनृत्यानां रक्तिः साधारणोगुणः । अतो रक्तिविहीनं यत् तन्न सङ्गीतमुच्यते ।”

सङ्गीत-साधक तो 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के सिद्धान्त को लेकर नादरूप देवता से 'नादब्रह्म' की उपासना करता है तदाकार वृत्ति तभी सम्भव है जब उसमें 'लयलीन' होने का धर्म निहित हो। 'आत्म-साक्षात्कार' के लिये चित्त की जिस एकाग्रता की अथवा अवधान की आवश्यकता पड़ती है वह 'साङ्गीतिक-नाद' में सहज प्राप्त है। गान्धर्व वेद में कहा गया है—

‘त्रिवर्गफलदाः सर्वेजपाध्ययनदानकम् ।
एकं सङ्गीतविज्ञानं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥

हर्षादिमुखदो धर्माः अर्थकामौ नृपादितः ।

निष्कामं तदनुष्ठानं मोक्षस्तस्मात्तदभ्यसेत् ॥

अर्थात् दान, अध्ययन, जपादि ये सभी धर्म-अर्थ-काम रूपी 'त्रिवर्ग' के देने वाले हैं केवल सङ्गीत ही चतुर्वर्ग फल को देता है । सङ्गीत से हर्ष आदि सुख मिलता है, यह धर्म का फल है, सङ्गीत से नृपतिगण प्रसन्न होकर गायक को अर्थ और काम देते हैं, और निष्काम रूप से राग-रागिणी की सेवा द्वारा मोक्ष लाभ होता है । भारतीय मनीषी सदा चतुर्वर्ग फलप्रद सङ्गीत की साधना में विश्वास करता है ।

पदार्थ सृष्टि का मूल कारण नाद-सृष्टि है । उसका बोध, पदार्थ बोध की जड़ें जमाता है । वस्तुतः तत्त्व और उसके व्यवहार हेतु प्रतीक या सांकेतिक शब्द के स्वरूप का ज्ञान दो भिन्न नहीं हैं । वह परस्पर देह और आत्मरूप है, और ज्ञान है—आत्मरूप यानी आनन्दमय, प्रकाशमय है । इस तरह सांगीतिक नाद अदृश्य होते हुए भी स्वयं अपने को 'आत्मवत्' प्रकाशित करता है । नश्वर ही शाश्वत का, शून्य ही मुक्ति का और शब्द ही शब्दातीत का साधन संगीत-कला में बन जाता है तब मोक्ष प्रदायी होता है । याज्ञवल्क्य स्मृति (३।१।५) में कहा भी है—

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।

तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति ॥

यहाँ उल्लेखनीय यह है कि मुनि ने 'वीणा' शब्द का प्रयोग किया है, जो संगीतशास्त्र में 'शारीर' (मानव कण्ठ) के लिए भी प्रयुक्त हुआ है । इस वीणा का 'वादक' स्वयं प्रभु है । दारवी वीणा तो इसी की अनुकृति है ।

उक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सांगीतिक क्रिया केवल साधन न होकर साध्य भी हैं । वह साधनावस्था तथा साध्यावस्था दोनों में आनन्द रूप ही है । संगीत साधक जब 'साधन' रूप संगीत का, रसा-स्वादन करने लगता है एवं उसके 'फल' के प्रति निःस्पृह हो जाता है तब 'साधन' ही साध्य बन जाता है ।

यह संगीत ही है जिसमें एक साथ सभी कुछ अनुस्यूत है, और यह भारतीय संगीत कला ही है, जिसकी एक साधना से ही चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं । यही भारतीय जीवन दर्शन के चार महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं, जिनको सर्वत्र कला आदि में आधार बनाया गया है ।

ब्रह्मग्रन्थिजमारुतानुगतिना चित्तेन हृत्पङ्कजे
सूरीणामनुं रञ्जकः श्रुतिपदं योज्यं स्वयं राजते ।
यस्माद् ग्रामविभागवर्णरचनाऽलंकारजातिक्रमो
वन्दे नादननुं तमुद्धरजगद्गीतं मुदे शंकरम् ॥

—संगीत रत्नाकर

तुषार कुदोज्ज्वलदेह्यष्टिः ।

काश्मीकपूर्वविलिप्त देहा ॥

स्तनान्तरे मौक्तिकहार शोभा ।

सितानना राजति तोडिकेयम् ॥

—राग तोडी-ध्यान, अनूप संगीत रत्नाकर

बहुरसमकरंदा सच्चिदानंदकंदा ।

अविमुकुलितयासां किन्नरीरंगराशी ॥

नरवररतिमोदां कार्मिनां श्रीविनीदा ।

जनधरश्रुति चूडां मंजरी रागचूडा ॥

—राग मंजरी

संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति : एक घातक विडम्बना

● स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति

सृष्टि के उद्यान में कुछ ऐसी भी कलियाँ होती हैं जो पूर्ण विकसित होने के पूर्व ही मुरझा जाती हैं। स्व० जयन्त कृष्ण मूर्ति बहुमुखी प्रतिभा के धनी एक ऐसे ही सांगीतिक व्यक्तित्व थे। मात्र २१ वर्ष की अल्पायु में ही वे काल कवलित हो गये। देहावसान से कुछ समय पूर्व स्व० कृष्ण मूर्ति द्वारा उनका लिखा हुआ यह विचारोत्तेजक लेख लेखक की सांगीतिक संवेदनशीलता एवं दायित्वों के प्रति उसकी सजगता का परिचायक है। —सम्पादक

कला संगीत के भारतीय श्रोता इस परम्परागत कला के अनिवार्य तत्वों के पीछे लगभग पागल होते हैं। संगीत के इन श्रोताओं को कुछ आत्मकेन्द्रित संगीतज्ञों, दम्भी पेशेवर कला—नेताओं और संगीत मास्टरों ने संगीत के बारे में खतरनाक हृद तक गुमराह कर दिया है। प्रभावशाली पेशेवर संगीतज्ञों के विचार, कार्यों तथा दम्भ ने श्रोताओं की श्रवण शक्ति और उनकी प्रशंसात्मक क्षमता का अपहरण कर लिया है। सामान्य भारतीय श्रोता एकदम गुमराह लोग हैं। इनकी संगीत सुनने की क्षमता और संगीतज्ञ के गुणों की प्रशंसा करने की प्रवृत्ति लगभग नहीं के बराबर हैं। भारतीय श्रोता बड़ी कठिनाई से समसामयिक या प्रचलित कला संगीतकी गुणवत्ता का सही मूल्यांकन कर पाते हैं।

पेशेवर कलाकारों की विवेकहीनता उनके आत्मकेन्द्रित अनियंत्रित तथा स्वार्थ पूर्ण वक्तव्यों तथा स्वार्थी कलात्मक गतिविधियों ने श्रोताओं को इस कदर गुमराह कर दिया है और उनकी श्रवण संवेदना को इस सीमा तक खोखला कर दिया है कि यदि इससे सन्बन्धित अनुभवों की बारीकियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाय तो सर्वदा पूर्वाग्रह ग्रस्त है या कोरी अप्रंशा।

व्यावहारिक संगीत या कला या कलात्मक व्यावहारिक बुद्धिमता के क्षेत्र में इस तरह का दम्भपूर्ण दावा है कि मैं शीर्षस्थ हूँ कलात्मक चातुर्य और

कला की मूल्यांकन क्षमता का दिवालियापन ही प्रकट करता हूँ। दम्भी कलाकार और उनके कार्यकलापों ने कलात्मक गतिविधियों के प्रगतिशील कार्यक्रमों को हजम कर डाला है और स्तरीय रचनात्मक उपक्रम के सभी आयाम बन्द कर दिया है।

दर हकीकत, पेशेवर कला संगीतज्ञ का दावा कि इस क्षेत्र में रचनात्मक गतिमानता का वे ही सूत्रधार हैं, पेशेगत व्यक्तिवाद की संकीर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति ही है और व्यक्तिवाद का एक ऐसा खतरनाक एवं भ्रामक स्वरूप है कि इससे संगीतात्मक उपलब्धियों के क्षेत्र में अस्वस्थ अलगाववादी प्रवृत्तियों तथा पारस्परिक वैमनस्य का वातावरण पैदा हो सकता है और अन्ततः यह कला-संगीत के क्षेत्र में कलात्मक गतिविधियों तथा रचनात्मक प्रतिभा के विकास को कुण्ठित तथा स्तरीय उपलब्धियों को बाधित कर सकता है।

स्वार्थ केन्द्रित संगीतज्ञों ने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से जो सीमित साम्राज्य खड़ा कर दिया है और जिससे इस पेशे में एक तरह का जंगलीपन आ घुसा है, वह इस बात का प्रतीक है कि कला के क्षेत्र में भी कला की नहीं, व्यक्तियों की पूजा शुरू हो चुकी है। कला (संगीत) के प्रभाव और कलाकार (संगीतज्ञ) के प्रभाव में कोई सम्बन्ध नहीं है। जो सही कलाकार हैं, वह कभी भी व्यक्ति प्रभावी दम्भपूर्ण कार्यक्रमों, और कलाकार की व्यक्तिगत हैसियत के दर्पपूर्ण

इजहारों तथा व्यक्तिगत सत्ता स्थापित करने के चक्कर में नहीं पड़ता और अपने को इन समाज विरोधी दम्भपूर्ण जंगली धाराओं से पृथक् रखता है। उसके दिमाग में यह दम्भ नहीं उपजता कि वह चोटी का कलाकार है।

सच्चा कलाकार इस शब्द के प्रति जागरूक रहता है कि कलात्मक प्रतिभा और रचनात्मक साधना के महासागर की गहराइयाँ कभी नापी नहीं जा सकती। वह प्रकृति की विराट सम्पत्ति की अपरि-सीमता से अवगत होता है और उसे यह पता होता है कि रचनात्मक उपलब्धियों के लिए किसी भी क्षेत्र में अनन्त आयाम होते हैं जिसे कोई भी कलाकार सीमाबद्ध नहीं कर सकता। रचनात्मक कलाकार यह जानता है कि किसी के द्वारा किया गया यह दम्भपूर्ण दावा कि उसकी रचनात्मक उपलब्धियाँ ही अन्तिम हैं या उसके व्यक्तिगत कीर्तिमान अजेय हैं, न केवल कोरा प्रलाप है, अपितु रचनात्मक कार्यों में लगे नये उभरते कलाकारों को हतोत्साहित करने की जबरदस्त साजिश भी है। ये दम्भपूर्ण दावे प्रशंसात्मक सूझ-बूझ और संवेदनशीलताको कुण्ठित करते हैं, स्वतन्त्र विकास के तमाम रास्तों को बन्द कर देते हैं और उभरते कलाकारों की वास्तविक रचनात्मक क्षमता तथा संवेदना का सर्वनाश कर डालते हैं।

मानवीय अनुभूतियाँ, मानव मस्तिष्क की मनो-वैज्ञानिक संरचना तथा आरोह-अवरोह तथा मनुष्य आत्मा की आन्तरिक गहराइयाँ तथा इसके बिम्ब इतने जटिल हैं कि कलात्मक अभिव्यक्ति और समझ को किसी निर्धारित परिभाषा के दायरे में कैद करना मुमकिन नहीं है। सौन्दर्य-बोध तथा इससे जुड़ी अनुभूतियाँ सतत परिवर्तनशील हैं और अभिव्यक्ति ढंग तथा तरीके भी हमेशा बदलते रहते हैं। सौन्दर्य बोध की तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति के माध्यम में गुणात्मक परिवर्तन होता है।

सौन्दर्य बोध की निरन्तर बढ़ती अपार मानवीय क्षमता तथा मानवीय संवेदनाओं का निरन्तर बढ़ता

भंडार जिस पर कभी रचनात्मक एवं कलात्मक प्रयासों का दारोमदार है, बहुत व्यापक और जटिल है, इतना जटिल कि कोई भी कलाकार, चाहे वह सर्वोत्तम रचनात्मक शक्ति और कलात्मक संवेदना से सम्पन्न हो और कलात्मक तथा रचनात्मक क्षेत्रों की उसकी पकड़ चाहे कितनी ही सटीक और गहरी क्यों न हो, व्यक्तिगत रूप से इसका यथेष्ट मूल्यांकन नहीं कर सकता। कलात्मक कार्यों तथा रचनात्मक उपलब्धियों की सजीव स्थितियाँ असंख्य हैं इन कार्यों के लिए पर्यावरणीय अवसर अनन्त हैं और इनमें कलाकारों के अन्दर पर्याप्त कलात्मक संवेदना जगाने की प्रभूत क्षमता है, लेकिन कोई कलाकार क्षमता के बल पर सौन्दर्य बोध के इन अनन्त आयामों को अपनी कला-साधना की सीमा में नहीं बाँध सकता। सभी बिम्ब, अनुभूतियाँ, बोध, प्रेरणा, संवेग और संवेदनाओं की सामुहिक पकड़ उस अकेले कलाकार के वश की बात नहीं।

एक व्यक्ति के रूप में कलाकार कलात्मक उपलब्धियों की दिशा में केवल एक सीमित दूरी तक ही जा सकता है और कलात्मक रचनाओं तथा विधानों के विराट महासागर में एक छोटी सी लहर ही जोड़ सकता है। इसलिए कलात्मक प्रतिभा के क्षेत्र में संकीर्ण स्वार्थ केन्द्रित तथा आत्माभिव्यक्ति करनेवाले दम्भपूर्ण दावों का कोई मतलब नहीं होता। किसी व्यक्तिवादी संगीतज्ञ का यह दावा कि संगीत की दुनियाँ का वह बादशाह है बिलकुल बेमानी और खेदजनक है।

इस संकीर्ण मनोवृत्ति से यह जाहिर होता है कि आज के ये संजीतज्ञ विवेकशून्यता के महाजाल में उलझ गये हैं। इस संकीर्ण मनोवृत्ति से उनकी रचनात्मक प्रतिभा निश्चित रूप से बाधित होती है। वे इस भ्रांति के शिकार हो जाते हैं कि सबकुछ किया जा चुका है और अब कुछ करना बाकी नहीं है। कलात्मक जोखिम उठाने का रास्ता भी उनके लिए बन्द हो जाता है और अपनी बादशाहत कायम रखने के उपक्रम में ही उनकी सम्पूर्ण कलात्मक दक्षता और प्रतिभा निष्क्रिय होकर धीरे-धीरे समाप्त होजाती है। ●

संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय

• श्रीमती गिरिजा देवी

भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री तथा पद्मभूषण उपाधियों से सम्मानित बनारस घराने की विश्वप्रसिद्ध गायिका श्रीमती गिरिजा देवी खयाल, ठुमरी, टप्पा होली, चैती, कजरी तथा भजन की एक सिद्धहस्त कलाकर्मी हैं। आपने संगीत की शिक्षा स्व० प० सरजू प्रसाद मिश्र तथा स्व० पं० चन्द्र मिश्र से प्राप्त की। ठुमरी गायिकी को आपने एक नया आयाम दिया है। प्रस्तुत लेख में श्रीमती गिरिजा देवी ने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि प्राचीन काल से चली आ रही साहित्य तथा संगीत की अजस्र सहगामी धारा और तदनु रूप ही शब्द एवं स्वर का समन्वय हमारे संगीत की एक अनिवार्य आवश्यकता है।

—सम्पादक

वसुन्धरा पर पदार्पण एवं विकास के बाद धीरे-धीरे मानव के ज्ञानचक्षु खुलने लगे। अन्तःकरण में व्याप्त असंख्य भावों-विचारों को प्रकट करने हेतु उसका भीतर व्यग्र हो उठा। अनवरत प्रयत्नों के पश्चात धीरे-धीरे वह अपनी बात शब्द द्वारा एक दूसरे को स्पष्ट करने में सक्षम हो गया। यही मानव जब कभी आह्लादित या अत्यन्त व्याकुल हो-उठा तो उसके कंठ से, उसके अंगों से जो भाव प्रदर्शन हुआ वही संगीत कहलाया जब वह शब्द को स्वरबद्ध करके गाने लगा तो शब्द तथा स्वर के समन्वय का प्रश्न आया और तभी शब्द एवं स्वर का उत्कृष्ट समन्वय हमारे संगीत का अभीष्ट बना।

वस्तुतः स्वर एवं शब्द के समन्वय का आदर्श प्रतीक तो स्वयं वीणा पुस्तक धारिणी माँ सरस्वती हैं जिनके एक हाथ में वीणा तथा दूसरे हाथ में पुस्तक है। और जो इस तथ्य का संकेत है कि हमारे यहाँ साहित्य एवं संगीत की दोनों धाराएँ आदि काल से ही सहज साहचर्य के साथ संसार में प्रवाहित होती चली आ रही हैं। शब्द तथा स्वर, दोनों की हो पृथक्-पृथक् सीमाएँ हैं। जैसे-शब्द में अगर साहित्य के सभी नव रसों के प्रकटीकरण की क्षमता है तो स्वर शृंगार (संयोग-वियोग), वात्सल्य, शान्त (भक्ति) आदि रस भावों में रससिक्त करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार दोनों

ही रसाभिव्यक्ति के स्रोत हैं। इसलिए दोनों के सम्यक् समन्वय से जो अभिव्यक्ति होगी वह निश्चय ही अलौकिक होगी।

एक ओर नाद तथा उसी से उद्भूत स्वर तो दूसरी ओर साहित्य का शब्द; एक नादब्रह्म तो दूसरा शब्दब्रह्म और इस प्रकार दोनों ही उस एक ही शक्ति पुंज के दो स्रोत हैं ऐसे में दोनों का सहज सामंजस्य सर्वथा प्रकृति प्रदत्त है।

अध्यात्मका पक्ष हो अथवा लौकिक, शब्द एवं स्वर का समन्वय तथा उसका प्रभाव सर्वत्र ही देखा जा सकता है।

जब स्वर सम्यक् रूप में बोलता है तो प्रकृति भी उसमें खो जाती है। चेतन की तो बात ही क्या? पेड़-पौधे भी उस प्रभाव से अपने को वंचित नहीं रख पाते। जड़-पाषाण तक संगीतमय हो जाते हैं, संगीत की स्वरवहिरियों से सन्दिग्ध हो उठते हैं पिघल जाते हैं। जड़-चेतन सभी को अपने संगीत में विभोर कर देने वाले स्वर सम्राट तानसेन तथा बैजू को भला कौन नहीं जानता।

मीरा, तुलसी, सूर, कबीर, गुह नानक आदि भक्तों ने भी शब्द तथा स्वर की एकात्मकता के रहस्य को भली भाँति समझा था। उल्लेखनीय है कि हमारे यह भवत भक्ति पदों की रचना ही नहीं करते थे अपितु उसे स्वर देखर गाते भी

थे उन्होंने इस रहस्य को समझा था कि जब तक शब्द को स्वरबद्ध नहीं किया जायेगा तब तक वह वांछनीय प्रभाव नहीं दे पायेगा, वह एक प्रकार से निर्जीव ही रहेगा, उसको जीवन्त करने का काम, उसमें प्राण फूँकने का काम तो स्वर ही करता है। मीराबाई 'हरि के गुण गाती थी' प्रभु को गा-गा कर रिझाती थी। मीरा गाती थी, 'ए री मैं तो प्रेम दोवानी मेरा दरद न जाने कोय' क्या प्रेम-दीवानो मीरा का यह दर्द बिना स्वर बद्ध किये प्रकट किया जा सकता है? क्या मीरा के दीवाने पन को, उसके दर्द की उत्कटता बिना स्वर के अभिव्यक्त हो सकती है? कदापि नहीं। इसीलिए मीरा गाती थी। मीरा की ही भाँति हमारे सभी भक्त कवि अनेक पद को भिन्न-भिन्न रागों में गाते थे। भक्त कवियों के पदों के साथ इंगित रागों के नाम भी इसी तथ्य के परिपुष्ट करते हैं।

जब संगीत में रस सम्प्रेषण, रस निष्पत्ति अथवा रसाभिव्यक्ति का प्रश्न उठता है तो यह बात बड़ी त्वरा से कह दी जाती है कि संगीत में कोई निश्चित रस अथवा भाव व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती लेकिन मैं तो नहीं समझती कि यह बात सर्वत्र लागू होती है। जब किसी वाद्य का स्वतंत्र वादन हो रहा हो तो वहाँ के लिए किसी सीमा तक यह बात भले ही ठीक हो किन्तु सर्वत्र नहीं। हमारा 'संगीत' इतना छोटा नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वहाँ गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों हैं। हमारी प्राचीन परंपरा में तीनों के समुच्चय को संगीत कहा है 'गीत, वाद्य तथा नृत्त त्रयं संगीत मुच्यते', वहाँ तो वांछित रस सम्प्रेषण की कोई समस्या ही नहीं थी। किन्तु आज के सन्दर्भ में भी; (स्वतंत्र वाद्य वादन को छोड़कर) प्रायः सर्वत्र ही, हर विधा में शब्द तथा स्वर का समन्वय अपनी अहं भूमिका निभाता है।

कुछ एक विशिष्ट प्रसंगों में भी शब्द एवं स्वर की यह भूमिका बड़े महत्त्व की है। उदाहरण के लिए 'अखियाँ रसीली तोरी श्याम' इस पद को ही ले लीजिए इसे हर रिश्ता अलग-अलग स्वर सामंजस्य से गायेगा। यही शब्द माँ के द्वारा वात्सल्य रस से ओत-प्रोत होकर निकलेंगे वहीं प्रेमिका के स्वरों में यह श्रृंगार भाव से प्रस्फुटित होंगे। शब्द तो वही रहेंगे किन्तु शब्दों को स्वरबद्ध कर देने पर उनका भाव,

प्रभाव, और किसी सीमा तक उनका अर्थ पाना व्यंजना भी भिन्न-भिन्न हो जायेगी। आखिर यह सब खेल किसका है? 'शब्द के साथ स्वर के उत्कृष्ट समन्वय' का ही तो है।

अब थोड़ी सी बात आज के प्रसंग में भी कर लें। हमारे यहाँ गायन-वादन की जितनी भी विधाएँ हैं हर विधा की अभिव्यक्ति की अपनी-अपनी सीमा है और उस विधा में शब्दों के साथ स्वर-संयोजन की भी सीमा है किन्तु क्या हम 'शब्द-स्वर समन्वय' के साथ न्याय कर पाते हैं? विधा कोई भी हो, ध्रुपद हो, खयाल हो अथवा ठुमरी हो हम स्वर-ताल का चमत्कार तो खूब दिखाते हैं किन्तु शब्द तथा स्वर के समन्वय के प्रति प्रायः भाव-शून्य हो जाते हैं। हमारे लोगों को यह शिकायत तो अवश्य रहती है कि हमारे शास्त्रीय संगीत में साहित्य (पद पक्ष) का सर्वथा अभाव है हमें सब कुछ स्वर से ही करना पड़ता है, पद के नाम पर तो कुछ है ही नहीं, परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि पद के नाम पर जो कुछ भी है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज तो शब्दों को तोड़-मरोड़कर गाने को एक परम्परा सी बन गयी है। मैं तो कहती हूँ यदि शब्दों के प्रति ऐसी उदासीनता है तो शब्दोंको बन्दिशों से निकाल ही क्यों न दिये जायें; केवल स्वर ही गाया जाय अलाप तान ही गाया जाय।

संगीत को 'स्वर-ताल-पदात्मकम्' कहा है अर्थात् बंदिश-विशेष में जो भी पद हैं उसे सजाना है और यह सजाना क्या है? मूलतः शब्द और स्वर का उचित समन्वय। ठुमरी को ही ले लें वहाँ बोल-बनाव के माध्यम से स्वर तथा शब्द दोनों ही एक दूसरे के इतने अन्तरंग अथवा एक दूसरे में इतने लीन हो जाते हैं, कि इनके पार्थक्य का बोध ही समाप्त हो जाता है। आज आवश्यकता है शब्द तथा स्वर के इसी सामंजस्य को, समन्वय के इसी मर्म को ठीक से समझने की। यह सही है कि शब्द तथा स्वर का पृथक-पृथक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है किन्तु सांगीतिक अभिव्यक्ति में हम दोनों में कितना तादात्म्य स्थापित कह पाते हैं हमारे लिए यह विशेष महत्त्व का है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि शब्द के भाव को सजीव अथवा उसे उत्कट करने का कार्य शब्द और स्वर के उत्कृष्ट समन्वय के द्वारा संभव है और हमें अपने संगीत में इसी भावना को जगाना होगा।

भारतीय संगीत में 'घराना' की अवधारणा

—डा० आदिनाथ उपाध्याय

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय पेशे से रेलकर्मि (यांत्रिक विभाग) होते हुए भी संगीत के एक समर्पित उपासक हैं। संगीत के प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण के पोषक श्री उपाध्याय संगीतविषयक कई महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं यहाँ लेखक ने 'घरानों' को हमारे संगीत का मेरुदण्ड मानते हुए उसकी अवधारणा पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है।

—स० सम्पादक

संगीत-जगत में 'घराना' एक बहुप्रचलित शब्द है। व्यावहारिक दृष्टि से भी हमारे संगीत-देह के साथ यह इतना रच-बस गया है, इतना आत्मस्थ हो गया है कि इसे अलग कर देने पर संगीत की चर्चा अधूरी ही रह जायेगी।

'घराना' के ही समानार्थक कुछ अन्य नामाभिधान भी हैं, जैसे—'सम्प्रदाय', 'स्कूल' तथा कभी-कभी ध्रुपद के प्रसंग में प्रयुक्त होने वाला शब्द 'बानी' जो ध्रुपद की चारो बानियों (गोबर हार, खण्डार, डागुर तथा नौहार) के पृथक्-पृथक् वैशिष्ट्य पर आधारित हैं। इतिहास की दृष्टि से 'सम्प्रदाय' सबसे प्राचीन शब्द है जो हमारे शास्त्रीय ग्रंथों में प्रयुक्त हुआ है और दक्षिण में आज भी प्रचार में है; 'घराना' तथा 'बानी' यह दोनों मध्ययुग की देन हैं, अन्तर केवल इतना है कि 'घराना' व्यापक अर्थों में संगीत से सह-सम्बद्ध है जब कि 'बानी' मूलतः ध्रुपद के सन्दर्भ से जुड़ा है और 'स्कूल' अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसे हमारे यहाँ 'सम्प्रदाय' आदि के समानार्थक, अनुवाद-सौकर्य के रूप में ग्रहण किया गया है।

घराना अर्थात् एक 'विशिष्ट शैली'—सामान्यतया किसी भी घराने का नामकरण स्थान-विशेष के नाम पर होता है। जैसे—ग्वालियर के नाम पर ग्वालियर घराना, बनारस के नाम पर बनारस घराना आदि।

किसी घराने का नाम हमारे कान में पड़ते ही हमारे सामने उस घराने का 'शैलीगत वैशिष्ट्य' चित्रित

हो जाता है और यही 'वैशिष्ट्य' उस घराने की पृथक् पहचान का मूल कारण भी हुआ करता है। जैसा कि हम सभी जानते हैं शैली तथा कलाकार में विषय तथा विषयी भाव से सम्बन्ध होता है अतः कलाकार की कला का वैशिष्ट्य कहे अथवा कलाकार का वैशिष्ट्य आशय एक ही होगा। कहना यह है कि किसी घराने का नामकरण तो क्षेत्र—विशेष से अवश्य जुड़ा होता है किन्तु उस घराने का प्रतिष्ठापक कोई विशिष्ट कलाकार ही होता है। जैसे—ग्वालियर घराने के जन्मदाता नत्थन पीरबख्श माने जाते हैं और इसी प्रकार अन्य घरानों की भी स्थिति है।

घराना अर्थात् 'शैलीगत वैशिष्ट्य' के प्राणतत्त्व : कलाकार द्वारा जो कुछ गायन-वादन अथवा नर्तन के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है उन्हीं निहित तत्वों से घराने के रूप में उसके शैलीगत वैशिष्ट्य की संरचना तथा उसी के अनुसार उसके एक पृथक् स्वरूप का प्रकटीकरण होता है। उदाहरण के लिए 'खयाल-गायन' में—आवाज लगाने का ढंग; आरम्भ स्वर लगाने तथा किसी स्वर पर न्यास करने की शैली; गीत की बन्दिश, उसका गठन तथा स्थायी अन्तरा गाने का ढंग; मुखड़ा पकड़ने तथा सम पर आने का ढंग; आलापचारी में आकार एवं सरगम के रूप में स्वर सन्निवेशों के प्रयोग तथा तान-बोलतान के भिन्न-भिन्न प्रकारों के प्रयोग का ढंग जैसे—आगरा घराने में ध्रुपद की भाँति नोम्-सोम् में आलाप का

प्रचलन है; राग के दशविध लक्षणों को अन्वित करते हुए रागदारी में स्वर-लय के विविध प्रयोग; स्वर-ताल-पद का सामंजस्य; इत्यादि बिन्दुओं के विशिष्ट प्रयोग' एक घराने से दूसरे घराने का पृथक् अभिज्ञान कराते हैं। कुछ ऐसे भी घराने हैं जो कुछ चुने हुए रागों में अपेक्षाकृत अधिक अनुराग रखते हैं और उनमें वे विशेष रूप से सिद्धहस्त होते हैं। जैसे दर-बारी, तोड़ी, माल-कौंस पूरिया जैसे राग किराना घराने के सिद्ध राग माने जाते हैं। इस घराने के गायक इन रागों की प्रस्तुति में भी अपनी अलग ही छाप छोड़ते हैं।

यहाँ वर्णित उपर्युक्त तत्वों में से एक अथवा एक से अधिक में जब कोई कलाकार अपनी प्रतिभा से कोई स्थायी वैशिष्ट्य पैदा करता है, तब यहाँ से 'घराने' का बीजारोपण होता है यद्यपि इस बीजारोपण का श्रेय उस कलाकार को जाता है जिसने विशिष्ट छापवाली गायिकी का प्रवर्तन किया किन्तु इस बीज को घराना रूपी पौधे में प्रतिष्ठित करने का कार्य उसके अनुयायी या शिष्य समुदाय करते हैं। इस प्रक्रिया से क्रमशः गुजरते हुए जब वही 'वैशिष्ट्य' संगीत समाज द्वारा स्वीकार्य हो जाता है तब उसे घराना के रूप में प्रतिष्ठा मिल जाती है। घराना-निर्माण की यह एक सामान्य प्रक्रिया है। यहाँ यह सहज ही समझा जा सकता है कि 'घराने' की स्थापना में गुरु तथा शिष्य दोनों की सहभागिता होती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि गुरु-शिष्य-परम्परा ही घराने का मुख्य आधार होती है यहाँ हमने ख्याल (गायन) के उदाहरण से इस प्रक्रिया पर विचार किया, संगीत के अन्य घटकों—वाद्य एवं नृत्य के साथ भी यही लागू होता है।

घराने का नामाभिधान—जैसा कि हम पहले कह चुके हैं किसी भी घराने का नाम सामान्यतया स्थानवाची होता है और यह उस घराने के अम्बुदय का मूलस्थल हुआ करता है जैसे—ग्वालियर घराना, दिल्ली घराना, लखनऊ घराना, पटियाला घराना, जयपुर घराना,

आगरा घराना, किराना घराना, आदि नामाभिधान उक्त तथ्य के ही सूचक हैं। कभी-कभी घराना अथवा वैशिष्ट्य की पहचान स्थानवाची न होकर व्यक्तिवाची हो जाती है। वस्तुतः यह स्थानवाची पहचान यदि परम्परावाद का द्योतक है तो व्यक्तिवाची व्यक्तिवाद का। परम्परावाद अर्थात् गुरु शिष्य परम्परा का निर्वाह, दूसरे शब्दों में 'नायिकी' का अनुसरण जहाँ गुरु का अनुसरण करना अभिप्रेत होता है। व्यक्तिवाद अर्थात् 'गायिकी', जिसका सम्बन्ध कलाकार के व्यक्तिगत कला-कौशल से है। नायिकी तथा गायिकी संगीत के यह दोनों ही प्रकार सदियों से अस्तित्व में रहे हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में केवल इतना ही कहना है कि जब किसी कलाकार के भीतर उसका 'व्यक्ति-कलाकार' वैशिष्ट्य के साथ विकसित होता है और वह 'नायिकी' से हटकर स्वतन्त्र रूप से 'गायिकी' के पथ पर चल पड़ता है तथा अपनी प्रतिभा से एक मौलिक शैली का विकास करता है तब उस कलाकार का अपने घराने (गुरु-शिष्य-परम्परा) से एक प्रकार विच्छेद हो जाता है, परिणाम स्वरूप कलाकार की मौलिक शैली की पहचान कलाकार के नाम के साथ होने लगती है। आज भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहाँ कलाकार मूलतः किसी प्रसिद्ध घराने से सम्बन्धित हैं किन्तु व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के कारण उसकी कला प्रस्तुती को उसके नाम से ही स्मरण किया जाता है। ग्वालियर घराने से सम्बद्ध, स्वर सम्राट पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ऐसी ही प्रतिभाओं में रहे हैं। गायन में 'काकु-प्रयोग' उनका अपना वैशिष्ट्य था।

'घराना'—हमारी सांगीतिक विरासत—घराने के वैशिष्ट्य को हम आरम्भ में ही इंगित कर चुके हैं, ऐतिहासिक विश्लेषण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि शताब्दियों से गुरु शिष्य परम्परा और उसी के सशक्त रूप—'घराना' के माध्यम से हमारा संगीत फूलता-फलता चला आ रहा है और आज भी वह एक सबल भूमिका निभा रहा है। यहाँ तक कि 'घराना-

परम्परा' को यदि भारतीय संगीत का मेरुदण्ड कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

उपसंहार के रूप में इतना ही निवेदन करना चाहेंगा कि 'घराना' हमारे संगीत की (गायन, वादन तथा नृत्य तीनों ही प्रसंगों में) एक समृद्ध विरासत है । गुण-दोष तो सर्वत्र ही होते हैं यहाँ भी हो सकते हैं किन्तु हमें गुणग्राही दृष्टि से इस विरासत का लाभ उठाना होगा । सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि हमारे घरानेदार संगीतज्ञों के पास अनेक लुप्तप्राय गायन-वादन की विधाओं तथा इनकी बन्दिशों का उत्कृष्ट संग्रह भरा पड़ा है इसके अतिरिक्त इनके यहाँ गुरु-शिष्य के आदर्श सम्बन्धों पर आधारित संगीत शिक्षण

में एक कड़ा अनुशासन है, पीढ़ी-दर पीढ़ी आगे बढ़ता हुआ संगीत-गुरुओं से प्राप्त शिक्षण का ठोस अनुभव तथा सँजोये हुए बहुमूल्य आप्त-आदेश हैं । और यह सभी हमारे लिये ग्राह्य हैं, अनुकरणीय हैं ।

यद्यपि इस दिशा में संगीत-सम्मेलनों, संगोष्ठियों व्यक्तिगत साक्षात्कार आदि के द्वारा तथा संगीत-संस्थाओं में इन कलाकारों के प्रवचन-प्रदर्शन द्वारा एक उत्साहवर्धक आरंभ हुआ है । आवश्यकता है एक सुसम्बद्ध एवं सुनियोजित दिशा निर्देश के द्वारा इन प्रयत्नों को गतिशील करने की, और जो कलाकार, शास्त्रज्ञ, समालोचक आदि सभी के समन्वित प्रयासों से ही सम्भव हो सकेगा ।

मेरा अनुभव, मेरी दृढ़ धरणा है कि राग और स्वर का प्रभाव व्यक्ति पर बिना किसी जाति, संस्कार, धर्म और देश-भेद के पड़ा करता है ।..... यह एक ऐसा माध्यम है जो सभी प्रकार के विभेदों से अतीत है और यही भारतीय संगीत की आत्मा है ।

—पं० ओंकारनाथ ठाकुर

भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा उसका गणितीय विश्लेषण

डा० केदारनाथ भौमिक

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ० केदारनाथ भौमिक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिकी संस्थान के गणित विभाग में रीडर पद पर कार्यरत हैं। अपने गुरु पं० बासुदेव प्रसाद से तबले का शिक्षण ग्रहण करते हुए तबला-वादन में आपने आज एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। संगीत और विशेष रूप से ताल विषयक महत्वपूर्ण शोधपत्रों के प्रस्तोता डा० भौमिक ने यहाँ संगीत में 'ताल' की भूमिका स्पष्ट करते हुए एक नयी शोध दृष्टि के साथ तालों के मर्म का गणितीय एवं आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

— सम्पादक

वर्तमान लेख में प्रयुक्त चिन्हों कीसूची :

- (i) $[a, b]$: Closed interval $a \leq x \leq b$
- (ii) $[a, b]$: Semi closed interval $a \leq x < b$
- (iii) $[a, b]$: Semi closed interval $a < x \leq b$
- (iv) def : definition या परिभाषा का संकेत है।
- (v) $m(X_i)$: Measure of the time unit X_i (समय की इकाई का मापदण्ड)
- (vi) def b : 'a' को 'b' के द्वारा परिभाषित करते हैं।
- (vii) $\forall t \in \mathbb{R}^+$: प्रत्येक धनात्मक समय के लिए।
- (viii) अणुद्रुत = \square , द्रुत = \circ , लघु = \mid , गुरु = — , प्लुत = \square

(अणुद्रुत व प्लुत का चिन्ह मुद्रण के सौकर्य के लिए परंपरा से हटकर लिया गया है)

ताल का महत्व :

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रदर्शन में अनेक विधायें प्रचलित हैं। इनमें 'ताल' का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन शास्त्रकारों ने कहा है "त' कारे शंकरो प्रोक्ता, 'ल' कारे पार्वती स्मृता"। वस्तुतः 'ताल' इन्हीं दो तत्त्वों से मिलकर बना है। चूँकि शंकर विश्व ब्रह्माण्ड के धारक हैं, अतः हमारे सौर मण्डल में उपस्थित नवग्रहों की गति 'शंकर' के द्वारा नियन्त्रित होती रहती है। दूसरे शब्दों में हर चेतन पदार्थ की गतिशीलता में शिवशक्ति विद्यमान है। इस गतिशीलता में एक विशिष्ट अनुशासन है जोकि शिवशक्ति के द्वारा नियन्त्रित होता रहता है। फलस्वरूप 'त' तत्त्व को शिवशक्ति का सांकेतिक चिन्ह माना गया है। ताल के दूसरे तत्व 'ल' का जागतिक पदार्थों की गतिशीलता में रस संचार करता रहता है जो कि 'महामाया' के शक्ति से नियन्त्रित होता रहता है। इसीलिए 'ल' तत्त्व को रस का सांकेतिक चिन्ह माना गया है। चूँकि अनुशासन कठोर होता है अतः उसमें सजीवता लाने के लिए 'रस' का संयोग होना नितान्त आवश्यक है।

वस्तुतः 'ताल' किसी भी संगीत-प्रदर्शन में माप का कार्य करता है। साथ ही 'ताल' को निकाल देने पर संगीत अपूर्ण तथा प्राणहीन बन जाता है। महान सरोद वादक स्व० उस्ताद अलाउद्दीन खाँ कहा करते थे— 'स्वर संगीत सुनने वालों को अपने आप में समेट लेता है तथा 'ताल' उन्हें नचाता है' इसके अतिरिक्त "गीत, वाद्य तथा नृत्तं ययं संगीतमुच्यते" जैसे शास्त्रीय उक्ति से भी यह स्पष्ट होता है कि सम्यक् ढंग से संगीत को प्रदर्शित करने के लिए वाद्य की भूमिका अपरिहार्य है। 'स्वर-ताल-पदात्मकं गान्धर्वम्' नाट्य शास्त्र की इस उक्ति से भी ताल का महत्व उजागर होता है।

संगीत-शास्त्र के अनुसार काल, मागं, क्रिया, अंग, ग्रह, कला, जाति, लय, यति तथा प्रस्तार यह ताल के दसप्राण (यानी तत्व) माने जाते हैं। किसी ताल के प्रदर्शन में 'ठेका' का प्रयोग किया जाता है। स्वरों की भाँति 'ठेका' का स्वरूप भी शब्द तरंग की भाँति उतार-चढ़ाव से भरपूर गीतात्मक होना चाहिए। इसलिए कुशल संगत-कार किसी ठेका के प्रदर्शन में इस प्रकार 'भराव' करते हैं ताकि 'ठेका' के स्वरूप में गीतात्मकता का आभास मिल सके। इसके अतिरिक्त संगतकार 'ठेका' के प्रदर्शन में तबला के उन बोलों का चयन करें जो कण्ठ-संगीत, वाद्य संगीत या नृत्य के छन्द के अनुकूल बन सके। एक तबला वादक दीर्घ अनुभव के बाद कुशल संगतकार बनते हैं तथा इसी अनुभव के दौरान उन्हें सूक्ष्म लय, गीत तथा 'रस' का अनुभव होता है। मोटे तौर पर लय गंगा की धारा की तरह समय का प्रवाह है जो महाकाल के चक्र में निरन्तर बहता रहता है। महान् नृत्यांगना स्व० अलकनन्दा देवी कहा करती थीं कि एक अच्छे संगतकार द्वारा तबले पर केवल एक उठान् बजाते ही महफिल गरम हो जाती है और श्रोतागण झूम उठते हैं। आगे प्रस्तुत है ताल का गणितीय विश्लेषण :—

समय की इकाइयाँ तथा मात्राएँ

माना R^+ ($+ < 0$) समय का धनात्मक (Positive) अन्तराल (Interval) है।

अब R^+ ($t < 0$) को (Ii) जैसे निर्धारित ($i =$ धनात्मक पूर्ण-संख्या) उप अन्तरालों (Subintervals) में बाँटते हैं। माना 'f' एक फलन (mapping) है जो अपने क्षेत्र (domain) $D_f = (I_i)$ से

चलकर फलन को दायरा (range) R_f तक पहुँचता है, जो कि सम-अवधि वाले हर प्रकार के शब्दों (ध्वनि)

जैसे हाथ की ताली या चर्मवाद्य पर, तारण या तंत्रवाद्य पर, तारण या बाँसुरी पर फुफ्फुकार आदि का समुच्चय (यानि Set) है। इसी फलन को निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं :

$$D_f = (I_i) \xrightarrow{f} R_f = (T_i), \quad \dots\dots\dots (1)$$

जहाँ 'T_i' समय की वह इकाई है जो कि $m(I_i)$ अवधि वाली हर आवाज का प्रतिनिधित्व करती है। m_i उपरोक्त प्रत्येक शब्द के समय के मापदण्ड (measure) को चिन्हित करता है।

अब यदि 'I' को सम अन्तराल (यानी बराबर फासले पर) बने 'i' अंशों में बाँटा जाये तो I_i का परिणामी प्रतिबिम्ब (image) $T_i = f(I_i)$ को 'i' मात्रा वाला इकाई कहा जायेगा। यदि 'T_i' को एक

आघात वाली क्रिया से प्रदर्शित करें तो उस इकाई को मूल समय इकाई (Basic time unit) X_i के द्वारा चिन्हित करेंगे। हर मूल समय इकाई X_i ($i=1, 2, 3, \dots$) संख्या तत्व के नियम (Law of Index) के द्वारा बचा हुआ है। दो मूल समय इकाइयों से मिलकर मिश्रित समय इकाइयों से मिलकर मिश्रित समय इकाई (composite time unit) बनती हैं। प्राचीन संगीत शास्त्रों में चर्चित समय के मूल इकाइयों का नाम निम्नलिखित माना गया है [1] :

X_1 : अणुद्रुत (u), X_2 : द्रुत (o), X_3 : द्रुत विराम (o'),
 X_4 : लघु (l), X_5 : लघु विराम (l'), X_6 : लघुद्रुत (q),
 X_7 : लघुद्रुत विराम (q'), X_8 : गुरु (S), X_9 : गुरु विराम (s'),
 X_{10} : गुरु द्रुत (s'), X_{11} : गुरुद्रुत विराम (s'), X_{12} : प्लुत (□),
 X_{13} : प्लुत विराम (□'), X_{14} : प्लुत द्रुत (□'),

X_{15} : प्लुत द्रुत विराम (□') या X_{16} : काक पद (+)।

कभी कभी X_4, X_5, X_7 तथा X_9 को क्रमशः चतुश्च, खण्ड, मिश्र तथा संकीर्ण कहा जाता है।

Law of Index के अनुसार घात वाली समय की इकाई x_i^p (p एक घनात्मक पूर्ण संख्या) को निम्नलिखित ढंग से परिभाषित कर सकते हैं :

$$\underbrace{x_i^p}_{\text{def}} x_i \cdot x_i \cdots x_i \quad (p \text{ गुणन खण्ड}) \quad (2)$$

$$m(x_i^p) \quad \underline{\text{def}} \quad p \cdot m(x_i) \quad (3)$$

$$m(x_i^p \times x_j^q) \quad \underline{\text{def}} \quad p \cdot m(x_i) + q \cdot m(x_j), \quad (4)$$

जहाँ p तथा q घनात्मक पूर्ण संख्याएँ हैं तथा x_j मूल समय इकाई है। प्राचीन कर्णाटक पद्धति में

35 तालों का उल्लेख है जो कि ध्रुव, मठ, रूपक, झम्प, त्रिपुट, अड्ड तथा एक ताल जैसे सात मूल तालों को चतुश्च, त्र्यश्च, खण्ड, मिश्र तथा संकीर्ण जैसे पाँच मूल जातियों के साथ संयोजित कर बनाया गया है। इस प्रकार इन पैंसीस तालों की बनावट में अनुद्रुत (x_1), द्रुत (x_2), लघु (x_4), गुरु (x_8) और काक पद (x_{16}) जैसे मूल समय इकाइयों को प्रयोग में लाया गया है। इन तालों का स्वरूप इस प्रकार है।

ध्रुव ताल : $x_1 x_2 x_2 x_1$, मठ ताल $x_1 x_2 x_1$, रूपक ताल : $x_1 x_2$
 झम्पाताल : $x_1 x_1 x_2$, त्रिपुट ताल : $x_1 x_2^3$, अड्डताल : $x_1^2 x_2^2$
 तथा एक ताल : x_1

जहाँ 'i' का मान क्रमशः 3, 4, 5, 7 तथा 9 है।

त्र्यश्च ध्रुव ताल $x_3 x_2 x_3^2$ इगारह मात्रे का बना होता है जिसे 'चारताल की सवारी' के नाम से भी जाना जाता है। चतुश्च ध्रुव ताल $x_4 x_2 x_4^2$ चौदह मात्रे का बना होता है जिसका स्वरूप आड़ा चार ताल $x_4^2 x_2 x_4$ से मिलता जुलता है। चतुश्च मठताल $x_4 x_2 x_4$ को 'मूलकता' भी कहा जाता है। चतुश्च

रूपक $x_4 x_2$ को दादरा ताल भी कहते हैं। त्रयश्च त्रिपुट $x_3 x_2^2$ को हिन्दुस्तानी संगीत में 'रूपक' ताल के नाम से जाना जाता है। चतुश्च त्रिपुट $x_4 x_2^2$ हिन्दुस्तानी संगीत में 'जत' ताल के नाम से जाना जाता है। त्रयश्च अड्डताल $x_3^2 x_2^2$ का स्वरूप संगीत रत्नाकर में उल्लिखित तुरंग लील ताल के अनुरूप है। चतुश्च अड्ड $x_4^2 x_2^2$ को हिन्दुस्तानी संगीत में एक ताल के नाम से जाना जाता है तथा खण्ड अड्डताल $x_5^2 x_2^2$ को हिन्दुस्तानी संगीत में धमार के नाम से जाना जाता है।

समयाबद्ध बिन्दु फलन (Time valued Point functions) :

माना $I_1 = (0, 1)$, $I_2 = (1, 2)$, $I_3 = (2, 3)$, $I_4 = (0, 2)$, $I_5 = (1, 3]$

तथा $I_6 = (0, 3]$ समय की उप अन्तरालें हैं जो कि एक क्षेत्र (domain) D_1 बनाती हैं। अब हम एक फलन (mapping) की रचना करते हैं जो D_1 से चलकर इसी फलन के उस दायरे (Range) तक पहुँचती है जो कि $(x_1, x_1; x_1, x_2; x_2, x_1; x_3)$ समुच्चय के अनुरूप हैं। इस फलन के द्वारा निम्नलिखित सम्बन्ध स्थापित होता है :

$$\left\{ \begin{matrix} I_1 \\ I_2 \\ I_3 \end{matrix} \right\} \rightarrow \left\{ \begin{matrix} x_1 \\ x_1 \\ x_1 \end{matrix} \right\}, \quad \left(\begin{matrix} I_4 \\ I_5 \end{matrix} \right), \quad \left[\begin{matrix} x_1 \\ x_2 \end{matrix} \right], \quad \left(\begin{matrix} I_6 \end{matrix} \right) \rightarrow x_1^6$$

तथा $(I_6)x_1$ (5)

जहाँ $m(I_1) = m(I_2) = m(I_3) = m(x_1) =$ एक मात्रा,

$m(I_4) = m(I_5) = m(x_2) =$ दो मात्रा,

तथा $m(I_6) = m(x_1^3) =$ तीन मात्रा हैं।

इस प्रकार, सदिश राशियाँ $P_1 = \left\{ \begin{matrix} x_1 \\ x_1 \\ x_1 \end{matrix} \right\}$, $P_2 : \left(\begin{matrix} x_1 \\ x_2 \end{matrix} \right)$

$P_3 : x_2$ तथा $P_4 : (x_3)$ जो मूल समय इकाई x_i ($i=1,2,3$) के द्वारा निर्दिष्ट क्रम में x_1

बनायी गयी है।

इन्हीं सदिश राशियों को समयाबद्ध-बिन्दु फलन के नाम से परिभाषित कर सकते हैं।

तालों की संरचना :

तालों की संरचना करने के लिए हम सर्वप्रथम क्षेत्र (domain) $D(g) : (P_1, P_2, P_3, P_4)$ को लेते हैं। अब हम एक आवर्तित गुणित फलन (Periodic product mapping) 'g' की रचना करते हैं जो प्रत्येक बिन्दु P_i ($i=1,2,3,4$) को समुच्चय $[x_3] = R(g)$ में मौजूद केवल एक ही समय इकाई से संयोग स्थापित करती है। अतः 'g' फलन के चलते हमें निम्नलिखित प्रतिबिम्ब (image) प्राप्त होते हैं :

$g(P_1) = x_1^3$, $g(P_2) = x_1 x_2$, $g(P_3) = x_2 x_1$ तथा $g(P_4) = x_3$ दूसरे रूप में (6)

$$D(g) = (P_1, P_2, P_3, P_4) \xrightarrow{9} R(g) = [x_3 = g(P_1), g(P_2), g(P_3), g(P_4)] \quad (7)$$

इसके अतिरिक्त $g(P_i)$ का आवर्तन तीन मात्रा हैं जो कि निम्नलिखित आवृत्त सम्बन्ध को सन्तुष्ट करती हैं :

$$g(P_i(t+3))=g(P_i(t)) \text{ At } ER + , \quad (8)$$

जहाँ 't' कोई घनात्मक समय का मान है ।

अतः हम $g(P_1)$, $g(P_2)$, $g(P_3)$ तथा $g(P_4)$ को तीन मात्रा के भिन्न भिन्न 'ताल' कहेंगे ।

परिभाषा : N—मात्रा की बनी ताल का 'n' परिमाण (dimemsion) वाले विशिष्ट बिन्दु फलन $P(t)$ के प्रतिबिम्ब $g[P(t)]$ को कहेंगे, जो कि एक-प्रति-एक (one to one) आवर्तित गुणित फलन 'g' के माध्यम से बनता है । गुणित फलन 'g' क्षेत्र (domain) $D(g) = (P_i)_{i=1,n}$ को समुच्चय $R(g)=(X_n]$ के साथ जोड़तो है तथा $g(P(t))$ का आवर्तन 'N' मात्रा है ।

आवश्यक बातें :

(i) $R(g)=(X_n]$ समुच्चय में 'N' मात्रा वाली हर तालों का समावेश है ।

$[X_n]$ का आकार (cordinality) के बारे में आगे विचार करेंगे ।

(ii) साधारणतः पूर्णसंख्या 'N' पूर्णसंख्या 'n' से बड़ा होता है ।

तालों की उत्पत्ति तथा आरोह मूलक सिद्धाण्ट (Induction) के द्वारा इनकी संख्याओं का निर्णय :

अब हम दिए हुए मात्रा के आधार पर तालों की संख्याओं का निर्णय करेंगे, तथा इसके पश्चात् ताल के जाति भेद पर विचार करेंगे :—

एक मात्रा वाले तालों की संख्या तथा उनका स्वरूप : x_1 —(9)

दो मात्रा वाले तालों की संख्या तथा उनका स्वरूप : (x_1^2, x_2) —(10)

तीन मात्रा वाले तालों की संख्या तथा उनका स्वरूप : $(x_1^3, x_1 x_2), (x_2 x_1), \text{ तथा } (x_3)$ —(12)

चार मात्रा वाले तालों की संख्या तथा उनका स्वरूप : $(x_1^4, x_1^3 x_2, x_1 x_2 x_1, x_1 x_3), (x_2^2, x_2 x_1^2), (x_3 x_1) \text{ तथा } (x_4)$ —(12)

(9), (10), (11), तथा (12) परिणामों को देखते हुए हम गणितीय आरोही सिद्धान्त (Mathematical Induction) अनुसार निम्नलिखित 'अनुमान' (Hypothesis) कर सकते हैं :

$$T(N) = \overset{N-1}{N} \text{ मात्रा वाले तालों की संख्या} = 2 \quad \text{---(13)}$$

जहाँ 'N' का मान 1, 2, 3, तथा 4 हैं ।

अतः अनुमान (13) तथा गुणोत्तर श्रेणी के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

$$\begin{aligned} T(N+1) &= x_1 T(N) + x_2 T(N-1) + x_3 T(N-2) + \dots + x_N T(1) + x_{N+1} \\ &= \overset{N-1}{2} + \overset{N-2}{2} + \overset{N-3}{2} + \dots + 1 + 1 \\ &= \overset{N}{2} \end{aligned} \quad \text{---(14)}$$

अतः परिणाम (14) से स्पष्ट होता है कि $(N + 1)$ मात्रा वाले तालों की संख्या 2^N है।

अतः अनुमान (13) प्रत्येक पूर्ण संख्या 'N' के लिए सत्य है। $[^N N]$ समुच्चय का आकार (Cardinality) : परिणाम (13) के अनुसार $[^N N]$

तालों का जाति-भेद तथा जाति पर आधारित समुच्चय :

परिभाषा—किसी ताल स्वरूप में यदि सर्वप्रथम समय इकाई x_N हो तो उस ताल की जाति (Specie) 'N' कही जायेगी। इस तरह 'N' जाति वाले तालों के समुच्चय को $[^P x_N]_N$ के द्वारा चिन्हित करेंगे।

उदाहरण : उपरोक्त परिणामों से यह प्रकट होता है कि

x_1^2 दो मात्रा वाला अणुद्रुत जाति का ताल है।

x_2 दो मात्रा वाला द्रुत जाति का ताल है।

$[x_1^3]_1 = (x_1^3, x_1 x_2)$: तीन मात्रा वाले अणुद्रुत जाति के तालों का समुच्चय।

$[x_1^4]_1 = (x_1^4, x_1^2 x_2, x_1 x_2 x_1, x_2 x_3)$: चार मात्रा वाले अणुद्रुत जाति के तालों का समुच्चय।

$[x_2^2]_1 = (x_2^2, x_2 x_1^2)$: चार मात्राओं वाला द्रुत जाति के तालों का समुच्चय।

$[x_2]_2 = (x_2)$: दो मात्रा का द्रुत जाति का ताल।

$[x_3^2]_3 = (x_3^2, x_3 x_2 x_1, x_3 x_1^2)$: छः मात्रा वाली त्र्यश्र जाति की तालें।

कर्नाटक ताल पद्धति तथा संगीत रत्नाकर ताल पद्धति में कतिपय रिक्त स्थानों का निर्णय :

उपयुक्त तालों के जाति भेद (परिणाम 13) के आधार पर दो ताल पद्धतियों में रिक्त स्थानों पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। शेष रिक्त स्थानों का विवरण इन्हीं उदाहरण के आधार पर निकाला जा सकेगा।

(१) कर्नाटक ताल पद्धति

उदाहरण :

(i) तीन मात्रा पर केवल एकही ताल ' x_3 ' का उल्लेख पाया जाता है, जब कि उपयुक्त तालों के जाति भेद के अनुसार 3 मात्रा पर कुल चार तालें $T(3)=2^2=4$ बनती हैं। अर्थात् तालों के कुल 3 रिक्त स्थान कर्नाटक ताल सूची में पाये जाते हैं।

(ii) चार मात्रा पर केवल एकही ताल x_4 का उल्लेख है, जबकि तालों के जाति भेद के अनुसार चार मात्रा पर कुल आठ तालें $T(4)=2^3=8$ बनती हैं। अर्थात् कर्नाटक ताल सूची में कुल 7 रिक्त स्थान पाये जाते हैं।

(iii) छः मात्रे पर केवल दो तालों ($x_4 x_2, x_3 x_1 x_2$) का उल्लेख मिलता है। किन्तु उपयुक्त तालों के जाति भेद में कुल 32 ताले ($T(6)=2^5=32$) बनती हैं। अर्थात् कर्नाटक ताल सूची में कुल 30 रिक्त स्थान पाये जाते हैं।

(२) इस तरह और भी अनेक रिक्त स्थानों को प्रकाश में लाया जा सकता है।

संगीत-रत्नाकर की ताल पद्धति :

उदाहरण :

(i) एक ताल (x_2) को अड़सठवाँ ताल माना गया है, जबकि उपरोक्त तालों के जाति भेद के अनुसार यह ताल (x_1, x_1^2, x_2) तीसरे नम्बर पर आना चाहिए। इसके अतिरिक्त x_1^2 ताल का स्थान रिक्त पाया जाता है।

(ii) आदि (x_4) तथा पंचम (x_2^2) तालों का क्रम पहला तथा पाँचवा माना गया है, जबकि जाति भेद के अनुसार इन तालों का स्थान क्रमशः आठवाँ तथा पाँचवा बनना चाहिए। जैसे—

$$[x_1^4]_1 = x_1^4 + x_1^2 x_2 + x_1 x_2 x_1 + x_1 x_3 \quad \text{---(15)}$$

$$[x_2^2]_2 = [x_2^2] + x_2 x_1^2 \quad \text{---(16)}$$

$$[x_3]_3 = x_3 x_1 \text{ और } [x_4]_4 = [x_4] \quad \text{---(17)}$$

अर्थात् संगीत रत्नाकर की सूची में $x_1^4, x_1^2 x_2, x_1 x_2 x_1, x_1 x_3, x_2 x_1^2$ तथा ($x_3 x_1$) तालों का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता है। अर्थात् कुल 6 रिक्त स्थान बनते हैं।

(iii) संगीत रत्नाकर में लघुशेखर ताल x_5 की क्रम संख्या 76 है, जबकि जाति भेद के अनुसार यह ताल 16 वें स्थान पर आता है। इसके अतिरिक्त अणुद्रुत जाति को आठ ताले ($T(4)=2^3=8$) द्रुत जाति को चार ताले ($T(3)=2^2=4$), तथा $x_3 x_1^2, x_3 x_2$ और $x_4 x_1$ ताल संगीत रत्नाकर की ताल-सूची में अनुपस्थित पाये जाते हैं।

(iv) संगीत रत्नाकर में सिंह लील (x_2^3), यति लग्न ($x_2 x_4$) और क्रोड़ातालचण्डनिःसारक (x_3^2) को क्रमशः दसवाँ, सतरवाँ तथा पैतालिसवाँ ताल माना गया है, जबकि जाति भेद के अनुसार इन तालों का स्थान क्रमशः सतरवाँ, छब्बीसवाँ तथा पचीसवाँ बनता है। इसके अतिरिक्त संगीत रत्नाकर के ताल सूची में अणुद्रुत जाति की 16 ताल, द्रुतजाति की 6 ताल तिस्र जाति की 3 ताल, चतुश्च जाति की 2 ताल तथा मिश्र जाति का केवल एक ही ताल अनुपस्थित पाये जाते हैं।

(v) संगीत रत्नाकर की ताल सूची में चतुर्थक ($x^2 x_2$) हंसलील (x_5^2) तुरंगलील ($x_3^2 x_2^2$), निःसारक (x_5^2), डोम्बली (x_5^2), क्षम्पा ($x_3^2 x_2$) तथा अड्ड ($x_2 x_4^2$) तालों की क्रम संख्यायें 4, 19, 35, 41, 72, 78 तथा 109 मानी गई हैं। जाति भेद के अनुसार चतुर्थक (चतुश्च जाति) का स्थान 478वाँ बनता है। हंसलील, निःसारक और डोम्बली मिश्र जाति के होते हुए एकही स्वरूप (x_2^5) बनाती हैं तथा इन सब तालों की क्रम संख्या 496 बनती है। तुरंगलील क्षम्पा तथा अड्ड की क्रम संख्याएँ 438, 444 तथा 376 बनती हैं। इस प्रकार संगीत रत्नाकर की सूची में अणुद्रुत जाति की कुल 256 ($T(9)=2^8$) तालें, द्रुतजाति की 127

(T (8)-1) तालें, तिश्त्रजाति की 62 (T (7)-2 तालें, चतुश्त्र जाति की 32 (T (6) तालें, खण्ड जाति की 15 (T (5)-1) तालें, षष्ठ जाति की 8 (T (4) तालें मिथ्र जाति की 4 (T (3) तालें, अष्ट जाति की 2 (T (2) तालें, संकीर्ण जाति की एक ताल \times_9 तथा दशम जाति का एक ताल \times_{10} अनुपस्थित पाया जाता है ।

संगीत रत्नाकर की सूची में शेष ताल भी इसी तरह अव्यवस्थित हैं तथा इस पद्धति में असंख्य तालों का स्थान रिक्त पाया जाता है ।

उपसंहार

- (i) तालों के जाति भेद के आधार पर कर्नाटक ताल पद्धति तथा संगीत रत्नाकर की ताल पद्धति में असंख्य रिक्त स्थान बनते हैं जिसकी कोई व्याख्या प्राचीन संगीत शास्त्र में नहीं पायी जाती है । यह एक खोज का विषय है ।
- (ii) तालों की अव्यवस्थित क्रमसंख्याओं का होना भी खोज का विषय है ।
- (iii) कुल तालों का एक ही स्वरूप होते हुए भी उनका नाम भिन्न-भिन्न रखा गया है । क्या इन तालों के ठेके एक दूसरे से भिन्न हैं ? यदि ऐसा ही है तो खयाल तथा ध्रुवपद की कुछ ऐसे बन्दिशों उपलब्ध होनी चाहिए जिनका वजन छन्द (लहजा) तथा आवर्तन उन बन्दिशों के लिए उपयोगी बने यह भी एक खोज का विषय है ।

संदर्भ-ग्रन्थ—संगीत रत्नाकर भाग 3 (शाङ्गदेव)

ताल-अंक—संगीत कार्यालय हाथरस

नाद-विनोद ग्रन्थ—पन्नालाल गोस्वामी, चुन्नोलाल गोस्वामी



पारिभाषिक पद 'लय' का एक रोचक पहलू :

लय शब्द हमारे शास्त्र ग्रंथों में प्रयुक्त हुआ है और यह आज भी प्रयोग में है किन्तु दोनों की कथन-शैली में एक महत्वपूर्ण अन्तर आ गया है । वस्तुतः यह अन्तर केवल दृष्टिकोण का है । तात्त्विक रूप में वहाँ कोई भेद नहीं है । शास्त्र-ग्रंथों में कहा गया है—क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः (संगीतरत्नाकर 5/44) अर्थात् क्रिया (सशब्द-निशब्द) के बीच का अन्तराल 'लय' है । इस आधार पर यदि क्रिया के बीच का अन्तराल बढ़ गया तो कहा जायेगा लय बढ़ गई, और अन्तराल घट जाने पर कहा जायेगा कि लय घट गई । जब कि आज के हिसाब से यह बात उल्टी प्रतीत होती है । आज जब क्रिया के बीच का अन्तराल बढ़ जाता है तब हम कहते हैं लय घट गई और जब क्रिया के बीच का अन्तराल घट जाता है तब हम कहते हैं लय बढ़ गई । कथन-शैली में यह अन्तर इसलिये आ गया है कि शास्त्र-ग्रंथों में क्रियाओं के 'अन्तराल को आधार मानकर' उपर्युक्त बात कही गयी है और आज हम क्रियाओं की 'गति को आधार मानकर' बोलते हैं । गणितीय दृष्टि से दोनों 'आधार' एक दूसरे के प्रतिलोमतः समानुपाती (Inversely Portionate) हैं । इसीलिये 'आधार' में जो अन्तर है उसी से आधेय (कथन) भी प्रभावित हुआ है, जो स्वाभाविक भी है ।

— सम्पादक

भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन : एक विहंगम दृष्टि

डा. कृष्णनाथ ओझा

डी. रे. का. वाराणसी में सहायक निरीक्षण अधिकारी के रूप में कार्यरत डा. ओझा हिन्दी के एक सिद्ध-हस्त लेखक होने के साथ-साथ संगीत प्रचार में भी रुचि रखते हैं। प्रस्तुत लेख में डा. ओझा ने भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन के जिस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है वह भारतीय चिन्तन के प्रति उनकी सजग आस्था का परिचायक है। —सम्पादक

भारतीय मनीषा ने जिन मूल्यों को स्थापित किया, जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनमें संदेह का किंचित भी अवकाश दृष्टिगत नहीं होता। ये सभी सिद्धान्त एवं जीवन मूल्य पर, अपरिवर्तनशील सत्य पर आधारित ही नहीं हैं वरन् अनुभव प्रसूत हैं। यथार्थ तर्क की कसौटी पर प्रमाणित विचार मात्र नहीं हैं वरन् भोगे हुए यथार्थ के गर्भ से निकले हैं, अनुभूति सागर के मंथन से प्राप्त हुए हैं, और देखे हुए हैं तपस्वी ऋषियों द्वारा जो न तो विचारक कहे गए, न चिन्तक और नहीं दार्शनिक। वे द्रष्टा थे उस सत्य के जिसे देखने की सिद्धि उन्हें वर्षों की कठोर तपस्या के उपरान्त ही त्यागी और ब्रती की मानसिकता से प्राप्त हुयी थी। आश्चर्य का विषय नहीं कि यह मूल्य काल को कसौटी पर खरे उतरे। संगीत सम्बन्धी मूल्य-सिद्धान्त भी अनुभव-प्रसूत हैं और देखे हुए हैं। इसीलिए आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं मानव जीवन के लिए जितने पहले थे।

मानव मात्र के लिए इन संगीत विषयक मूल्यों की महत्ता की सही समस्या के लिए यह समीचीन प्रतीत होता है कि इनका प्रतिपादन करने वालों की दृष्टि का अवलोकन कराने वाली कुछ विशिष्टताओं पर विचार किया जाय।

भारतीय मनीषा द्वारा स्थापित मूल्यों एवं सिद्धान्तों की, जीवन-दर्शन की, जितनी अधिक आलोचना प्रत्यालोचना होती है उतनी किसी अन्य संस्कृति द्वारा स्थापित मूल्यों की नहीं। इसका कारण क्या है? जहाँ अन्य धर्मावलम्बी सामान्यतया अपनी धार्मिक मान्यताओं एवं मूल्यों को ईश्वर प्रदत्त

कह कर उनकी आलोचना को मर्यादा विरुद्ध समझते हैं—कभी कभी तो कुछ लोग इसे अपमान समझ कर इसका घोर विरोध करते हैं वहीं भारतीय संस्कृति में शिक्षा पद्धति में तो शंका करने की छूट देने और शिक्षक द्वारा उसका समाधान करने की व्यवस्था है ही, सत्संग की भी महती परम्परा है जहाँ श्रोतावर्ग की शंकाओं को आमन्त्रित करने और समाधान करने की व्यवस्था है। विद्वत् समाज तो इन मूल्यों को खुली चर्चा करता ही है साथ ही लोक जीवन में विद्वानों के साथ ही सामान्य नागरिकों की उपस्थिति में भी शास्त्रार्थ होता है। इस परम्परा की परिव्याप्ति की सोचा इस तथ्य से उद्घाटित होती है कि विवाह जैसे सामाजिक कार्य-कलापों में भी दोनों पक्षों के पण्डित वर्ग के बीच शास्त्रार्थ हुआ करता है।

इस परम्परा से यह नितरा स्पष्ट है कि भारतीय जीवन दृष्टि इन मूल्यों के प्रति नितान्त निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने और उसमें असत्य का अंश, यदि हो तो, उसे खोज करके निकाल देने की प्रथा-प्रश्रय की समर्थक है। दूसरा तथ्य जो स्पष्ट रूप से प्रखर होता है कि पूर्ण समाज को यह मूल्य सम्प्रेषित हों क्योंकि इन मूल्यों को अपनाकर लोक जीवन सुखी, स्वस्थ और पूर्ण हो यही तो मूल उद्देश्य था। भारतीय दर्शन का उद्देश्य केवल वैचारिक तर्क संगति और एवं जिज्ञासु मन की संतुष्टि मात्र ही नहीं है। वरन् उपलब्ध सत्य को जीवन में उतारना भी है। उसका व्यवहार भी है। कारण स्पष्ट है। वैदिक जीवन दृष्टि का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण-समर्पण का कल्याण स्वस्थ सुखी मानव जीवन

तथा समाज की स्वाभाविक पतनोन्मुख परिवर्तन दिशा पर अंकुश लगाना है। मानव सुखी और स्वस्थ जीवन यापन करे तथा समाज का अस्तित्व बना रहें। धर्म ही समाज का धारण कर सकता है।

वैदिक काल के संगीत में भी यही मूल्य निहित है अर्थात् मानव जीवन का स्थायी सुख एवं सम्पन्नता। वैदिक काल में संगीत अत्यन्त सम्मान जनक स्थान पर प्रतिष्ठित है। कोई भी धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठान बिना संगीत के साहचर्य के संपादित नहीं होता। वैदिक काल से ही संगीत की अजस्र अप्रतिहत धारा अद्य पर्यन्त निरन्तर निर्वाध प्रवाहित है। संगीत से हमारा सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार सम्बद्ध है कि संगीत-विहीन रस हीन जीवन की हम कल्पना भी नहीं कर पाते। आज भी ललित कलाओं में संगीत का सर्वोच्च स्थान तो बना ही हुआ है साथ ही लोक जीवन में शिशु जन्म से ही जीवन से संगीत जो सम्बन्ध स्थापित करता है वह अन्त तक बना ही रहता है। जीवन में संगीत की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि साहित्य संगीत-विहीन व्यक्ति को पशु कहने में भी भारतीय चिन्तन-बोध को संकोच नहीं होता।

मानव जीवन में संगीत की इस अनुपमेय महत्व मूल के कारण को समझने के लिए यह समीचीन होगा कि हम संगीत के उद्भव एवं विकास पर एक विहंगम दृष्टि डालें।

भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति है और आवश्यकता भी। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में समर्थ समस्त कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोच्च है इसमें सदेह नहीं। संगीत के स्वर भावनाओं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में समर्थ होने के साथ ही मुखर शब्दों के माध्यम से होने वाले सम्प्रेषण को भी स्वर-सहयोग द्वारा सामर्थ्य प्रदान करते हैं। यह तथ्य ध्यान में रखकर संगीत के उद्भव एवं विकास पर विचार करना अभीष्ट होगा।

संगीत के आरम्भ के विषय में विभिन्न मत हैं किन्तु आज प्रायः सर्व स्वीकृत मत है कि मनुष्य में अनुकरण करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूपेण होती है तथा मनुष्य के स्वरतन्त्र अन्य प्राणियों से कहीं अधिक विकसित हैं। इन्हीं गुणों के

आधार पर मानव ने पशु पक्षियों की बोलियों से उनके कंठ से निकलने वाले स्वरों के अनुकरण से स्वर प्राप्त किए और क्रमशः संगीत का विकास हुआ।

उपयुक्त विचारधारा ने मेरी समझ से कई महत्वपूर्ण तथ्यों को अनदेखा कर दिया जबकि उन तथ्यों की उपेक्षा से सत्य का हाथ लगना असंभव ही होगा। अतः उन तथ्यों पर विचार करना अपरिहार्यतः आवश्यक है।

अभिव्यक्ति के लिए उपलब्ध शाब्दिक भाषा सर्वश्रेष्ठ है और विचार विनिमय एवं विचारों भावनाओं के सम्प्रेषण में समर्थ भी। किन्तु इस मानवीकृत भाषा के प्रयोग करने की सामर्थ्य का विकास करने के लिए शिक्षा की अपरिहार्य आवश्यकता होती है। फिर बहुत सी भाषाएँ होने के कारण विभिन्न भाषा-भाषी कठिनाई में पड़ जाते हैं और पारस्परिक बातचीत का क्रम अवरुद्ध हो जाता है।

किन्तु एक ऐसी भाषा भी है जिसे सीखना नहीं पड़ता, जो प्रकृति प्रदत्त भाषा है; प्रकृति की सम्पूर्ण व्यवस्था में एक कार्य-कारण सम्बन्ध सर्वत्र दृष्टिगत होता है; अकारण इस व्यवस्था में कुछ भी घटित नहीं होता; प्रकृति प्रदत्त विकसित स्वर-तन्त्र इसी लिए है कि मानव प्रकृति-प्रदत्त भाषा का प्रयोग सहज स्वाभाविक रूप से कर सके। और वह भाषा है “स्वर की भाषा”। नवजात शिशु भी जन्म लेते ही इसी प्राकृतिक भाषा में अपनी क्षुधा तृष्णा-निद्रा पीड़ा तथा भय आदि की सफल अभिव्यक्ति करता है और सद्यः मातृत्व-पद-गौरव विभूषित उसकी माँ बिना किसी पूर्व अनुभव के भी शिशु की भाषा को बखूबी समझती है और उसकी आवश्यकताओं को पूर्ति करती है। अबोध शिशु भी माँ के महत्वपूर्ण स्नेहिल स्पर्श और वात्सल्य पूर्ण स्वरों की भाषा को समझ कर माँ की गोद में निर्भय होकर गहरी निद्रा में निमग्न हो जाता है।

शिशु रूप में, जीवन के प्रथम क्षणों में हम जिस स्वर भाषा का प्रयोग करते हैं उसे जीवन पर्यन्त करते रहते हैं। यह दूसरी बात है कि हमारा उधर ध्यान रहता है अथवा नहीं। जिस प्रकार शारीरिक श्रम के परिश्रम स्वरूप श्वास गति बढ़ जाती है हमें श्वास की गति को बढ़ाना नहीं पड़ता ठीक इसी प्रकार शान्ति, प्यार, भय, क्रोध, वेदना

और करुणा आदि भावनाओं के साथ-साथ हमारा स्वर स्वतः परिवर्तित होता रहता है अप्रयास । स्पष्ट है कि इन भावनाओं एवं संवेदनाओं और स्वरों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । एक की उपस्थिति में दूसरे की उपस्थिति एक अनिवार्य स्थिति है । करुणा विगलित स्वरों में क्रोध की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते और घृणासिक्त स्वरों में प्रेमगीत नहीं गाए जा सकते ।

भावनाओं और स्वरों के इसी साहचर्य से वस्तुतः संगीत का विकास हुआ है । स्वरों की साधना से स्वर सिद्ध कलाकार, किसी भी रस की निष्पत्ति में, स्वर प्रयोग द्वारा समर्थ होता है । उदाहरणार्थ करुण रस-निष्पत्ति समर्थ स्वरों के निरन्तर सार्थक प्रयोग से श्रोतावगं में करुण रस का संचार किया जा सकता है । इसी आधार पर सहायक स्वरों की सहायता तथा उनकी संयोजनादि के द्वारा राग रागिनियों का विकास भारतीय संगीत में हुआ ।

सच तो यह है कि सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने पर भी मनुष्य इसी प्रकृति का, इसी प्राकृतिक व्यवस्था का एक अंग है-एक घटक है । प्रकृति से अलग करके मनुष्य की स्थिति को देखना उचित एवं न्याय संगत नहीं है । मानवीय भावनाओं और स्वरों का अन्योन्याश्रित संबंध हमने देखा । किन्तु स्वरों की यही अन्तिम सीमा नहीं है । स्वरों से सम्पूर्ण प्रकृति ही सम्बद्ध है । नाद स्वर का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है । यह परिव्याप्ति प्राणी मात्र तक भी सीमित नहीं वरन् सम्पूर्ण व्यवस्था से सम्बद्ध है । इस रहस्य को आधुनिक युग के अन्यतम गायक, विचारक पं० ओंकार नाथ ठाकुर ने पहचाना और स्वर साधना द्वारा सफल प्रयोग करके केवल स्वर सिद्ध नहीं वरन् रस सिद्ध गायक के रूप में प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त किया । पं० ओंकार नाथ जो ने इस रहस्य का भी अनुभव किया कि इस प्रकृति में ऐसा कुछ भी नहीं जो स्वरों से प्रभावित न हो । उन्होंने जगदीश चन्द्र बोस की प्रयोगशाला में प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि पौधों में, उनके विकास में भी स्वरों का प्रभाव पड़ता है । स्वरों द्वारा दीपक जला देना, वृष्टि करने आदि की चर्चा भारतीय वाङ्मय में मिलती है । पंडित जी ने उसे सिद्ध किया । इससे यह प्रमाणित होता है कि यही आधार

है ऋतु संबंधी, दिन के प्रहर सम्बन्धी और भावनाओं से सम्बन्धित रागों की रचना का ।

उपयुक्त विवेचन से स्वरों का प्रभाव स्पष्ट है तथा उसके उपयोग का भी संकेत मिलता है । वैदिक काल में तथा कालान्तर में भी, दीर्घ काल तक जब तक यज्ञों की परम्परा जीवित थी ऐसा उल्लेख मिलता है कि यज्ञ के लिए स्वरों द्वारा ही (मंत्रोच्चारण में स्वर प्रयोग) अग्नि प्रज्वलित की जाती थी । साम गायन कामनाओं की सिद्धि के लिए प्रयुक्त किए जाने लगे थे । साम गायन में दैवी शक्ति के निवास की मान्यता का आधार यही है । वत्स द्वारा रचित साम-कामनाओं की पूर्ति में सफल होने के कारण ही “कामसनि” कहलाने लगे । रचनाओं का पाठ सस्वर किया जाता है और इन स्वरों की विशिष्ट एवं निर्दिष्ट स्वर रचना भी जिसमें परिवर्तन करना वजित था । डा० पसंजवे प्रभृति विद्वानों के अनुसार भी साम गान के मूल रूप में ऐसी नियम बद्धता है जिसमें परिवर्तन के लिए कोई भी अवकाश नहीं है ।

यह स्वर की ही महत्ता है जो साम गायन की प्रतिष्ठा के रूप में वैदिक कालीन ग्रन्थों में सर्वत्र दृष्टिगत होती है । यहाँ तक कि निर्विवाद रूप से स्वीकृत आदि अनादि ग्रन्थ ऋग्वेद की तुलना में कुछ लोगों ने सामवेद को अधिक प्राचीन और श्रेष्ठ माना । वास्तविकता यह है कि ऋचाओं की स्वर रचना साम से ही ज्ञात होती है और इन विशेष स्वरों के प्रयोग में निहित है ऋचाओं की सामर्थ्य ‘पुरुष-सूक्त’ में ऋक् तथा साम को विधाता की आदिम सृष्टि माना गया । यह उल्लेख मिलते हैं जहाँ घोषणा की गई है कि साम की जाने बिना वेदों का रहस्य जानना संभव नहीं है । ‘बृहद् देवता का कहना है कि ‘जो पुरुष साम को जानता है वही वेद के रहस्य को जानता है ।’

“सामानि या वेत्ति सः वेद तत्त्वम्” कृष्ण ने स्वयं को सामरूप कहा है ।

उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है ‘नाद’ को भारतीय मनीषा ने ‘नादब्रह्म की’ संज्ञा अकारण ही नहीं दी है ।

आज मानव समाज जिन स्थितियों से गुजर रहा है उसमें मानव मात्र के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया है। पतनोन्मुख समाज, जो विनाश के कगार पर खड़ा हुआ है, उसके प्रत्येक घटक का जीवन भारस्वरूप हो गया है। चिन्ता, अशांति सामाजिक तनाव से मुक्ति की ही संभावना संगीत में निहित नहीं है वरन् संगीत चरित्र निर्माण, सु-संस्कार आदि अनेक उपलब्धियों के द्वारा भी उन्मूलित करने

में समर्थ है। ध्वनि-प्रदूषित वातावरण में संगीत को शरण जीवन दायिनी है मंगल कारिणी है। संगीत की साधना कल्याण की साधना है। स्वर की भाषा सम्पूर्ण मानव मात्र की मातृभाषा है जो वात्सल्य से अपनी संतान का पोषण और कल्याण करती है। दुःख-रोग-शोक का निवारण करती एवं मुक्ति का द्वार उन्मुक्त करती है।

‘न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वराः ।
न नादेन विना नृत्यं तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥
नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनादनः ।
नादरूपा परा शक्तिर्नादरूपो महेश्वरः ॥

— बृहद्देशी —

संस्कृति अन्तःकरण है, सभ्यता शरीर है। संस्कृति अपने को सभ्यता द्वारा व्यक्त करती है।— डा० सम्पूर्णानन्द

“लोक संगीत ही हमारे शास्त्रीय संगीत का मूलधार है।”— कुमार गन्धर्व।

शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ

अताई	: संगीत के शास्त्रीय ज्ञान से शून्य ।	ख्याल	: हमारे वर्तमान शास्त्रीय संगीत का प्रमुख-रागदारी प्रकार
अदा	: भावपूर्ण मुद्रा ।	गतभाव	: कथक नृत्य का एक अंग ।
अनाहत नाद	: बिना आघात के जन्यनाद ।	गमक	: स्वर का कम्पयुक्त प्रयोग ।
अल्पत्व	: राग की अवतारणा में स्वरों का अल्प प्रयोग ।	गायिकी	: 'नायिकी' को अलंकृत करके गाना, इसी के विकास क्रम में कलाकार की 'विशिष्ट शैली' का जन्म होता है ।
अवरोह	: स्वरों का अवरोहण अथवा नीचे जाने वाला क्रम ।	ग्रह	: जाति एवं राग का आरम्भिक स्वर ।
अष्टपदी	: जयदेव की कृति ।	चतुरस्र	: ताल-जाति का मुख्य प्रकार ।
अन्तरा	: गीत (वन्दिश) का दूसरा खण्ड ।	छायालग राग	: वह राग जिसपर अन्य राग की छाया हो ।
अंश	: राग का प्रमुख स्वर ।	जवारी खोलना	: वाद्य की गूँज बढ़ाने की क्रिया करना ।
आदिताल	: दाक्षिणात्य त्रिपुट ताल का एक भेद, उत्तरीभारत के त्रिताल जैसा	ततकार	: नृत्य के बोल ।
आरोह	: स्वरों का ऊपर जाने वाला क्रम ।	तिरोभाव	: राग का स्वरूप छिपाना, वैचित्र्य पैदा करने के लिए रागदारी में किया जाता है ।
आलाप	: धीमी गति से स्वर विस्तार ।	तौर्यत्रिक	: संगीत, गीत, वाद्य तथा नृत्य का समुच्चय ।
आविर्भाव	: तिरोभाव के पश्चात् राग का मूल स्वरूप स्पष्ट करना ।	त्र्यस्र	: ताल जाति का एक प्रकार ।
उत्तरांग	: सप्तक का उत्तरार्ध ।	दशविध रागलक्ष्मण	: ग्रह अंश, तार-मन्द्र न्यास अपन्यास अल्पत्व बहुत्व षाडव औडव ।
उद्गाता	: सामवेद का मुख्य गायक ।	नायिकी	: परम्परागत संगीत प्रस्तुति ।
उपज	: कल्पना भूत स्वर या स्वर समूह ।	नृत्त	: अभिनय रहित अंग-विक्षेप
कण	: स्वर का अल्प स्पर्श ।	नृत्य	: अभिनय सहित अंग-विक्षेप ।
कलावंत	: ध्रुपद गायक (मध्यकालीन संज्ञा)		
कृति	: कर्नाटक संगीत का एक प्रमुख गीत प्रकार ।		
कम्पन	: गमक का एक प्रकार ।		
काकु-स्वर प्रयोग	: प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से एक ही स्वर का भिन्न-भिन्न प्रकार से लगाव ।		
कायदा	: ठेके पर आधारित विशिष्ट बोल-रचना ।		
कुतप	: वाद्यवृन्द ।		
खटका	: एक गमक-प्रकार ।		

नृत्य की मुख्य शैलियाँ	: भरत नाट्यम्-दक्षिण भारतीय, कथकली-केरल प्रदेश का, कथक-उत्तर भारत का, इसे नटवरी नृत्य भी कहते हैं; मणिपुरी-मणिपुर क्षेत्र का नृत्य ।	लक्षण	: शास्त्र-सिद्धान्तगत ।
नृत्य (कथक) के घराने	: लखनऊ, जयपुर तथा बनारस ।	विष्णुपद	: ध्रुवपद शैली का गीत प्रकार जिसका मूल सम्बन्ध मंदिर-परंपरा से रहा है ।
पकड़	: राग-वाची स्वर-समूह ।	षड्जपंचम भाव	: सा और प के बीच का संवाद - सम्बन्ध जिसमें तेरह (१३) श्रुतियों का अन्तराल होता है ।
पढ़न्त	: बोलों को मुख से बोलने की क्रिया	षड्जमध्यम भाव	: सा और म के बीच का संवाद - सम्बन्ध जिसमें नौ (९) श्रुतियों का अन्तराल होता है ।
परन	: मृदंग या तबले पर बजाये जाने वाले बोल समूह ।	सादरा	: ध्रुवपद शैली का एक गीत प्रकार
बहुत्व	: रागदरी में स्वर-विशेष का बहुल प्रयोग ।	साम	: गेय मन्त्र, इसी से सामवेद ।
बाज	: वादन शैली ।	संकीर्ण राग	: अनेक रागों की छाया वाले राग; मिश्र पीलू, मिश्र खमाज आदि; इनका प्रयोग अधिकतर ठुमरियों में होता है ।
मसीतखानी	: बिलंबित गत	सप्तक	: सात स्वरों का समूह (सा से नि तक) ।
रजाखानी	: द्रुत लय की गत ।	स्थायी	: गीत (वन्दिश) का पहला खण्ड ।
लग्गी	: तबले के बोल समूह का एक प्रकार ।		
लड़ी	: बोलों-लगियों की शृंखला ।		
लहरा	: लयदर्शक गत ।		
लक्ष्य	: प्रयोगगत ।		

जब आभार व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं मिलते :

शिव-काली मन्दिर के संगीत-कार्यक्रम के लिए जब हम लोगप्रिय ठुमरी गायिका सुश्री नैना देवी से उनके कार्यक्रम की आकांक्षा से संकोच से डरते-डरते यह निवेदन किए कि हमलोग तो अपने कार्यक्रम में आपको निमन्त्रित करने की भी योग्यता नहीं रखते । इस पर उन्होंने बड़ी सहजता से सकारात्मक सारगर्भित उत्तर दिया—‘आपके संगीत-आयोजन में यदि अपने आप आकर अपना कार्यक्रम दूँ तो ?’ मैं उत्तर से स्तम्भित रह गया । और मेरा हृदय आह्लाद से भर गया लेकिन इस बहुमूल्य सदाशयता का आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं था ।

शिवेन्द्र प्रताप सिंह

हमारे लेखक



श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा
सुमुवाही कालोनी, सुन्दरपुर
वाराणसी ।



डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित
6 जोधपुर कालोनी का० हि०
विश्वविद्यालय वाराणसी ।



श्रीमती गिरिजा देवी
एच-19 संजय गांधी नगर, वाराणसी ।



स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
सुमुवाही कालोनी सुन्दरपुर वाराणसी ।



डॉ० कृष्णनाथ ओझा
56-डीरेका, वाराणसी ।



डॉ० ऋत्त्विक सान्याल
बो 5/6 मानस मन्दिर कालोनी, वाराणसी ।



डॉ० केदारनाथ भौमिक, गणित प्रोफेसर
प्रायोगिकी संस्थान का.हि.वि.वि. वाराणसी



डॉ० (श्रीमती) विमला मुसलगाँवकर
13, दीनदयाल नगर, वाराणसी ।



श्री आलोक प्रियदर्शी
आवास सं 626 इ डीरेका वाराणसी ।



डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
374 ए, डीरेका वाराणसी ।

शिव काली मन्दिर का शारदीय नौरात्र का सांगीतिक कार्यक्रम

शिव-काली मंदिर संगीत समिति के माध्यम से डीरेका में जो सांगीतिक नवचेतना जगी है और लोगों में शास्त्रीय संगीत के प्रति जो रुझान आयी है उसका बहुत बड़ा श्रेय अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा को जाता है। ई० सन् 1987 की शारदीय नौरात्र की अष्टमी को इसी मन्दिर पर जब सुर-ताल और आवाज के धनी इस क्षेत्र के एक लोकप्रिय गायक श्री विजयी सिंह का गायन चल रहा था तभी बाबा को भीतर से कुछ प्रेरणा जगी और गायन समाप्त होते ही समीप में खड़े संगीत भक्त श्री कमला सिंह को यह आदेश दिया कि अब से इस तरह के कार्यक्रम प्रत्येक वर्ष होने चाहिए और तभी से श्री लक्ष्मू महाराज की अध्यक्षता में प्रत्येक शारदीय नौरात्र में शास्त्रीय संगीत का यह द्विदिवसीय कार्यक्रम निरन्तर सफलता पूर्वक होता चला आ रहा है।

1988 के कार्यक्रम

गायन—श्री अखौरी नागेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—सुश्री दीप्ति बनर्जी
नृत्य—श्री रवि शंकर मिश्र तथा श्री सामता मिश्र
स्वतंत्र तबला वादन—श्री लक्ष्मू महाराज

1989 के कार्यक्रम

गायन—श्री अजीत भट्टाचार्य
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—श्री बादल महाराज
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
गायन—श्री छन्नू लाल मिश्र
कथकनृत्य—सुश्री उर्मिला शर्मा
तबला संगतकार—प० लक्ष्मू महाराज, श्री सत्यनारायण सिंह
हारमोनियम—श्री परशुराम पाण्डेय, श्री विनोद लैले
सारंगी—श्री गणेशजी

1990 के कार्यक्रम

शहनाई—नैयर खाँ (सुपुत्र विस्मिल्लाह खाँ)
गायन—प० छन्नूलाल मिश्र

वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
कथक नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र, श्री सामता मिश्र
गायन—श्री प्रदीप कुमार, श्री सत्य नारायण सिंह (बम्बई)
सितार—सुश्री रक्तिमा सरकार
कथक नृत्य—सुश्री सोनाली मुखर्जी
स्वतंत्र तबला वादन—पं० लक्ष्मू महाराज ।
तबला संगतकार—पं० ईश्वरलाल मिश्र, श्री कुबेर मिश्र, श्री किशोर मिश्र
हारमोनियम—श्री ध्रुवजी
सारंगी—श्री गणेश जी, श्री सन्तोषजी

1991 के कार्यक्रम

दि० 16-10-91

1. शहनाई—श्री रामाश्रय
2. कंठ संगीत—सुश्री ऋचा जौहरी
3. सितार—सुश्री रक्तिमा सरकार
4. वायलिन-सितार युगलबन्दी—डा० रामू शास्त्री (वायलिन), श्री अमरनाथ मिश्र (सितार)
5. कथक नृत्य—श्री सामता मिश्र, श्री रविशंकर मिश्र

दि० 17-10-91

1. 'नादाचर्चन' संगीत पत्रिका का लोकार्पण माननीय डा० विद्या निवास के करकमलों द्वारा
2. वाद्य वृन्द—मैहर वाद्य वृन्द, मैहर म० प्र०
3. गायन—श्रीमती मंगला तिवारी
4. सरोद—श्री विश्वजीत राय चौधरी
5. तबला—श्री लक्ष्मू महाराज

बहुत पहले, हमलोग बाला जी मन्दिर (काशी) में पूजा के समय शहनाई बजाते थे । इसके लिए महाराजा ग्वालियर की ओर से वेतन भी मिलता था ।..... घरानों की गुरु शिष्य-परम्परा में, अथवा विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सभी जगह अपनी-अपनी शैली से संगीत की सेवा हो रही है । मैं तो बस यही कहूँगा कि दूसरों में जो भी बात अच्छी हो हमें उसे ग्रहण कर लेना चाहिए ।

—उस्ताद विस्मिल्लाह खाँ

(उस्ताद साहब ने अपने यह उद्गार सम्पादक के साथ एक छोटे से साक्षात्कार में व्यक्त किये)

“यूँ तो यह बात बड़ी आसानी से कह दी जाती है कि हम परमात्मा के ही एक अंश हैं और वह सदा ही हमारे भीतर विद्यमान रहता है। किन्तु क्या हम हृदय से कभी इसका सच्चा अनुभव कर पाते हैं ? शायद नहीं। यह संगीत ही है जो आत्मा और परमात्मा के सामीप्य का बोध अत्यन्त सहजता से करा देता है। संगीत की इस सिद्धि का अहसास योगिराज श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरी की तान से कराया था। मध्यकाल में स्वामी हरिदास जी ने भी अपनी संगीत साधना में संगीत की इसी अलौकिक शक्ति का अनुभव किया था और अपने शिष्यों के द्वारा इसे अधुष्ण बनाये रखने का आह्वान किया था। आज के प्रसंग में भी, सभी को एक सूत्र में बाँधने का यदि कोई सुलभ और सशक्त माध्यम है तो वह है संगीत। क्योंकि संगीत की दुनिया में धर्म और जाति का कोई भेद नहीं होता। यहाँ तो हमारे लिए पहले संगीत होता है फिर कुछ और। और जब हम संगीतमय हो गये तो फिर भेद किस बात का ? सारे द्वन्द्व-द्वैत स्वतः ही समाप्त हो गये। इन्साफ का मंदिर है ये भगवान् का घर है।

—लक्ष्मी महाराज

बंगाली बाबा के प्रति

एक सुमन-शुभाशीष की याचना में

—शिवसेवक त्रिपाठी

प्रेरणा के स्रोत् !
 करुणा से ओत्-प्रोत्,
 कालजयी ! चले गये परम-धाम ।
 अकाम, निष्काम ।

तपःलीन योगी ।
 काली के उपासक,
 दुर्गा के दास,
 शक्ति के आराधक,
 सप्तशती-पाठ ।
 सूनी-सी पर्णकुटी,
 और कहीं प्रवास !

विल्व-वृक्ष, आम्र-कुन्ज
 देख रहे वाट !
 स्मृतियों में आओगे,
 झाँकोगे,
 दोगे—एक सुमन-शुभाशीष—
 आशा विश्वास ।



With best compliments from :

CIMMCO STEEL FOUNDRY

Manufacturers of

*Quality Steel Castings in Numerous
Sizes, Shapes & Specifications*

*Equipped with up-to-date
manufacturing and testing facilities*



Cimmco Limited

**(Steel Foundry Division)
Birlanagar, Gwalior (M.P.)
474 004**

Gram : CIMSTEEL

Telex : 0786-211 CIMC IN

Phone : 28714

28718

28719

24122

पिछले कार्यक्रमों की एक झाँकी



श्री लक्ष्मीमहाराज, भावभीनी मुद्रा में स्वतन्त्र तबलावादन प्रस्तुत करने हुए



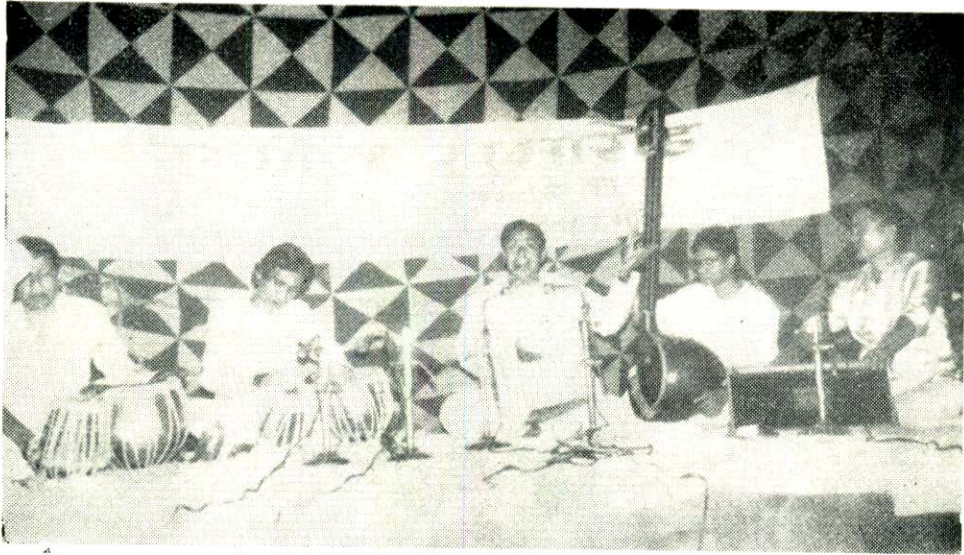
श्री अजीत भट्टाचार्य गायन की भावपूर्ण मुद्रा में



उर्मिला शर्मा, तांडव नृत्य की प्रभावशाली मुद्रा में



श्री छन्नु लाल मिश्र, गायन की आह्लादपूर्ण मुद्रा में



श्री बादलजी भावपूर्ण गायन प्रस्तुत करते हुए



श्री रामू शास्त्री वायलिन की प्रभावशाली प्रस्तुती

हमारे कलाकार



श्रीमती मंगला तिवारी
भास्कर भवन, लेन नं० 17
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी ।



डा० राम शास्त्री
प्राध्यापक, वायलिन
का० हि० विश्वविद्यालय, वाराणसी ।



कु० ऋचा जौहरी,
द्वारा-श्री ओ० पी० जौहरी
7, ब्रह्मानन्द नगर दुर्गाकुण्ड, वाराणसी ।



Verma Trafag Instrument Pvt. Ltd.

Manufacturers of :-

Temperature Switches, Oil Pressure Switches, Air Pressure
Switches, Transmitters and Controllers.



13th Floor
Dr. Gopal Das Building
Barakhambha Road,
NEW DELHI



IS : 691
IS : 694
IS : 1026
IS : 1554
IS : 9968



SKYTONE CABLES

FIRE INSURANCE APPROVED

SINCE 1953

- | | |
|----------------------------|-----------------------------|
| ● Power and Control Cables | ● PVC Flexibles and Cords |
| ● House Wiring Cables | ● Railway Signalling Cables |
| ● Panel Wiring Cables | ● Flame Retarding Cables |
| ● Instrumentation Cables | ● Telecommunication Cables |
| ● Flexible Trailing Cables | ● Industrial Wiring Cables |

SKYTONE SALES (P) LTD.

Office : B-321, New Friends Colony, New Delhi-110 065

Ph. : 6831708, 637174, 6833231

Show Room : 1878/3, Mahalaxmi Mkt., Bhagirath Palace, Delhi-6

Phone : 2529987

Works : 42-43, Industrial Area, N.I.T. Faridabad-121001

Phones : 812-2395, 812-3394, 812-2456

Khandelwal Press, Varanasi.